लेखक—

सूर्य्यबलीसिंह

रहे जन्म से मृत्यु लौं, ब्रह्मचर्य-व्रत धार ।
समझो ऐसे वीर को, पौरुष पुरुषाकार ॥
बाल ब्रह्मचारी जहाँ, उपजें परमोदार ।
'शंकर' होता है वहाँ, सबका सर्व-सुधार ॥

—शंकर

प्रकाशक—

प्रथम संस्करण

अक्टूबर १९२८

मूल्य एक रुपया

प्रकाशक—
एस. बी. सिंह एण्ड को.
बनारस सिटी।

आवश्यक-सूचना

क्या आप सुभीतेसे पुस्तकें मँगाना चाहते हैं? तो सिर्फ आठ आनेका टिकट ही भेज देनेसे, इस कार्यालयके स्थायी ग्राहकोंकी श्रेणीमें, आपका नाम सदैवके लिये लिख लिया जावेगा और आपको हमारी पुस्तकें ।) आना रुपया तथा और सब तरहकी पुस्तकें =) आना रुपया कमीशन पर मिला करेंगी।

मैनेजर, एस० बी० सिंह एण्ड को०,
बनारस सिटी।

मुद्रक—
श्रीमन्नालाल वर्मा
सरस्वती-प्रेस
काशी।

समर्पण

परम देश-भक्त, सौम्यमूर्त्ति, उदार-चेता

तथा

परमविद्यानुरागी

एवं

अत्यन्तोत्साही कृपालु

प्रयाग-निवासी श्रीमान् बा० साँवलदासजी खन्ना

के कर-कमलोंमें

यह तुच्छ भेंट

सादर-सप्रेम

समर्पित

सूर्य्यबलीसिंह

भूमिका

देहधारी मात्रका जीवन, ब्रह्मचर्यपर ही स्थित है। खासकर मानव-जातिके लिए तो यही बात है। ऐसे प्रयोजनीय एवं महत्त्व-पूर्ण विषयपर जितनी भी पुस्तकें निकाली जायँ, थोड़ी हैं। यही सोचकर मैं भी आज यह 'ब्रह्मचर्यकी महिमा' नामकी पुस्तक लेकर अपने पाठकोंके सामने उपस्थित हो रहा हूँ। यद्यपि हिन्दीमें इस विषयपर दो-एक पुस्तकें निकल चुकी हैं, फिर भी यह पुस्तक कई अंशोंमें विशेषता रखती है।

ब्रह्मचर्यके प्रत्येक पहलुओंपर तो काफी प्रकाश डाला ही गया है, साथ ही इसके अत्यन्त आवश्यकीय अंग प्राणायाम, आसन तथा गार्हस्थ्य जीवन-विधि आदिको भी बड़ी ही सरलताके साथ समझानेका प्रयास किया गया है। इस पुस्तक-द्वारा पाठकगण वैदिक प्राणायाम भी सीख सकते हैं। आशा है हिन्दी-जनता इस पुस्तकसे लाभ उठाकर मेरे परिश्रमको सफल करेगी।

ता० [illegible]
हिन्दी-पुस्तकालय
मिर्जापुर सिटी

निवेदक—
गुरुबलीसिंह

पहला प्रकरण

दूसरा प्रकरण

तीसरा प्रकरण

चौथा प्रकरण

ब्रह्मचर्यकी महिमा

पहला प्रकरण

ब्रह्मचर्य

सतसङ्गति मुद मङ्गल मूला। सोइ फल सिद्धि सब साधन फूला॥
सठ सुधरहिं सतसङ्गति पाई। पारस परसि कुधातु सुहाई॥

साधु चरित सुभ सरिस कपासू। निरस बिसद गुनमय फल जासू॥
जो सहि दुख पर छिद्र दुरावा। वन्दनीय जेहि जग जसु पावा॥

—रामचरित-मानस

यों तो ब्रह्मचर्यके बहुतसे अर्थ होते हैं, किन्तु यहाँ हमारा अभिप्राय वीर्य-रक्षासे है, और ब्रह्मचर्यका यही अर्थ प्रचलित भी है। 'ब्रह्म' शब्दका अर्थ—बढ़ना, प्रसार, विकास,

परब्रह्म, वीर्य, सत्य आदि बहुतसे अर्थ होते हैं और चर्यके अध्ययन, रक्षण, नियम, उपाय, साधन आदिका बोध होता है। वीर्यकी रक्षा करनेवालेको ब्रह्मचारी कहते हैं। ब्रह्मचारी उसे कहते हैं, जो ज्ञानकी वृद्धिके लिए यत्न करे, पवित्र होनेके लिए उद्योग करे अथवा बुद्धि-विकासका प्रयत्न करे। ब्रह्मचर्य बहुत ही प्राचीन तथा प्रभावोत्पादक है। इसीपर संसार टिका हुआ है। स्पष्ट रीतिसे यह समझना चाहिये कि वीर्यकी रक्षा करते हुए वेदाध्ययन-पूर्वक ईश्वर-चिन्तन करनेका नाम ब्रह्मचर्य है।

वास्तवमें हमारे वैदिक कालमें आर्योंने ब्रह्मचर्यका प्रचार किया था। यह प्रथा पौराणिक कालतक मर्यादित रही, और वहाँसे इसकी अवनति होने लगी तथा आज इस दशाको पहुँच गयी। ब्रह्मचर्यका थोड़ा-बहुत वर्णन चारों वेदोंमें पाया जाता है। हमारे सब धार्मिक ग्रन्थ ब्रह्मचर्यके कायल हैं और यह कहते हैं कि सांसारिक और पारमार्थिक उन्नतिकी जड़ ब्रह्मचर्य ही है।

ब्रह्मचर्यकी महिमा

ब्रह्मचर्यकी क्या महिमा है, यह लिखना साधारण काम नहीं; क्योंकि इसकी महिमाको वही मनुष्य जान सकता है, जो पूरा ब्रह्मचारी हो, किन्तु बतला नहीं सकता। वास्तवमें यदि देखा जाय, तो संसारमें जितने बड़े-बड़े काम हुए हैं, सब ब्रह्मचर्यके

ही प्रतापसे । ब्रह्मचर्यके बलसे ही देवताओंने मृत्युपर विजय पायी है ।

इस ब्रह्मचर्यकी इतनी बड़ी महिमा होते हुए भी आज हम उसकी महानताको भूलकर नीचताके दलदलमें फँसे हुए हैं। कहाँ हमारे वीर्यवान्, सामर्थ्यवान् तथा प्रतिभावान् पूर्वज और कहाँ वीर्यहीन, अकर्मण्य और पद-दलित उनकी सन्तान हमलोग। आकाश-पातालका अन्तर है। हमारे इस पतनका मूलकारण वीर्यनाश ही है। यदि आज हमलोग इस प्रकार नष्ट-वीर्य न हुए होते, तो इस अधोगतिके गढ़ेमें कदापि न गिरते। ब्रह्मचर्य-नाशसे ही हमारा सुख, तेज, आरोग्य, बल, विद्या स्वातन्त्र्य और धर्म मिट्टीमें मिल गया।

जिस प्रकार दीवारों के आधारपर छत रहती है, जड़ोंके आधारपर वृक्ष खड़े रहते हैं, उसी प्रकार वीर्यके ही आधारपर मनुष्यका शरीर रहता है। ज्यों-ज्यों वीर्यका नाश होता जाता है, त्यों-त्यों हमारी तन्दुरुस्ती कम होती जाती है। वीर्यको नष्ट करनेवाला मनुष्य कभी जीवित नहीं रह सकता। इसीसे शंकर भगवान्ने कहा भी है :—

'मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दु धारणात्'

अर्थात्—वीर्यकी एक बूँद नष्ट करना मरण है और उसकी एक बूँद भी धारण करना जीवन है। सचमुच ही यह कथन अमिट और यथार्थ है। वीर्यकी रक्षा करना ही जीवन है और उसका नाश करना ही मृत्यु है।

वीर्य अनमोल वस्तु है। इसीसे चारों पुरुषार्थ साधित होते हैं और यही मुक्तिका देनेवाला भी है। ब्रह्मचर्य धारण किये बिना, न तो अबतक कोई मनुष्य संसारमें श्रेष्ठ बन सका है और न बन सकता है। नष्ट-वीर्य मनुष्य कभी भी पवित्र, धर्मात्मा या महात्मा नहीं हो सकता। उन्नतिका मूलमंत्र ब्रह्मचर्य ही है। हमारे पूर्वज आर्यलोग इसी ब्रह्मचर्यके प्रतापसे ही भू-मण्डलमें विख्यात थे, सब देशवाले उनका लोहा मानते थे और डरते थे। उनका सामाजिक और नैतिक जीवन प्रधानतया इसी ब्रह्मचर्यके ऊपर अधिष्ठित था। पर हाय! महाभारतके साथ ही आर्योंके उत्तम सिद्धान्तोंका पतन हो गया। दिन-पर-दिन आर्योंकी अवनति होने लगी और अन्तमें यह दशा हुई कि हम उन्हींकी सन्तान होकर उनके आदर्शोंको भूल अनाचारके गढ़ेमें गिर गये। ब्रह्मचर्यके नाशसे ही संसारमें आज हमलोग गुलाम कहे जा रहे हैं, चारों ओर अपमान सह रहे हैं।

धन्वन्तरि महाराज एक दिन अपने शिष्योंको आयुर्वेदका उपदेश कर रहे थे। पाठ समाप्त होनेपर शिष्योंने जिज्ञासा की कि, भगवन्! कोई ऐसा उपचार बतलाइये, जिस एकके सेवनसे ही सब तरहके रोगोंका नाश हो सके। मनुष्यमात्रके कल्याणके लिए आप अपना अनुभव किया हुआ कोई एक ही उपाय बतलानेकी कृपा कीजिये।

शिष्योंके मुखसे यह प्रश्न सुनकर धन्वन्तरिजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और बोले—प्रियवत्स! तुम लोगोंको अनुभव किया हुआ

ऐसा ही एक उपचार बतलाते हैं, ध्यानसे सुनो। इसकी सत्यतामें तनिक भी सन्देह नहीं है—

मृत्युव्याधिजरानाशी पीयूषं परमौषधम्।
ब्रह्मचर्यं महद्यत्नं सत्यमेव वदाम्यहम्॥
शान्तिं कान्तिं स्मृतिं ज्ञानमारोग्यञ्चापि सन्ततिम्।
य इच्छति महद्धर्मं ब्रह्मचर्यं चरेदिह।
ब्रह्मचर्यं परं ज्ञानं ब्रह्मचर्यं परं बलम्।
ब्रह्मचर्यं मयोह्यात्मा ब्रह्मचर्येव तिष्ठति॥
ब्रह्मचर्यं नमस्कृत्य चासाध्यं सधयाम्यहम्।
सर्वलक्षणहीनत्वं हन्यते ब्रह्मचर्यया॥

अर्थात्—यह मैं सच कहता हूँ कि मृत्यु, रोग तथा बुढ़ापेका नाश करनेवाला अमृत रूप बड़ा उपचार, ब्रह्मचर्य-रूप महायत्न है। जो शान्ति, सुन्दरता, स्मृति, ज्ञान, आरोग्य और उत्तम सन्तति चाहता है, वह इस संसारमें सर्वोत्तम धर्म ब्रह्मचर्यका पालन करे। ब्रह्मचर्य ही परमज्ञान और परमबल है; यह आत्मा निश्चय रूपसे ब्रह्मचर्यमय है और इसकी स्थिति भी मनुष्य शरीरमें ब्रह्मचर्यसे ही होती है। ब्रह्मचर्यमय परमात्माको नमस्कार कर मैं असाध्य रोगियोंको भी चंगा कर देता हूँ; इस ब्रह्मचर्यकी रक्षासे सब तरहके अशुभ नष्ट हो जाते हैं।

ब्रह्मचर्यका पालन करनेसे ही परमगति मिलती है। इसीसे शंकरजीने अपने मुखारविन्दसे कहा है:—

तपस्तपइत्याहुर्ब्रह्मचर्यं तपोत्तमम् ।
ऊर्ध्वरेताभवेद्यस्तु स देवो नतु मानुषः ॥

अर्थात्—तप कुछ भी नहीं है। ब्रह्मचर्य ही उत्तम तप है। जिसने वीर्यको अपने वशमें करलिया है, वह मनुष्य नहीं, देवता है। अखंड ब्रह्मचारी पितामह भीष्मने युधिष्ठिरको ब्रह्मचर्य का उपदेश करते हुए कहा है कि:—

ब्रह्मचर्यं सुगुणं, शृणुष्वं सुवाविया ।
आजन्म मरणाद्यस्तु ब्रह्मचारी भवेदिह ॥

यानी—मैं ब्रह्मचर्य का गुण बतलाता हूँ, तुम स्थिर बुद्धिसे सुनो। जो मनुष्य जन्मभर ब्रह्मचारी रहता है, उसे इस संसारमें कुछ भी दुःख नहीं होता।

सबसे पहला और मुख्य ब्रह्मचारी परमात्मा है। क्योंकि वह ब्रह्मके साथ-साथ रहता है। उसके बाद दो ब्रह्मचारी कहे जा सकते हैं। पहले ब्रह्मचारीका नाम शिवजी है। भगवान् शंकरजी परम-योगी हैं। इनको ब्रह्मचर्य का गुरु कहना अधिक उपयुक्त होगा। एक बार शिवजी अपने ब्रह्मचर्य-व्रतकी दृढ़ताके लिए तपस्या कर रहे थे। इन्द्रने इनका तप भंग करनेके लिए कामदेवको इनके पास भेजा। फिर क्या था कैलासमें शिवजी पर बाण-वर्षा होने लगी। शिवजीने अपने योगबलसे इसका कारण जान लिया। उन्हें काम-देवके कपट व्यवहारपर क्रोध आया और प्रलय करनेवाले अपने तीसरे नेत्रको खोल दिया। महाकवि कालिदासने अपने कुमार-सम्भवमें लिखा है:—

इन्होंने अपने ब्रह्मचर्य का यहाँ तक पालन किया कि स्वप्नमें भी कभी इनका वीर्य नष्ट नहीं हुआ। ब्रह्मचर्य के प्रभावसे ही इनका शरीर वज्रके समान हो गया था। इन्होंने ब्रह्मचर्य के बलसे ही महापराक्रमी बहुतसे राक्षसोंका मद चूर्ण किया था। इसीके प्रतापसे इनमें अद्भुत वाक्-चातुरी और अपूर्व विद्वत्ता थी।

किष्किधाकांडमें लिखा है कि जब सुग्रीवने हनूमानको भेद-जाननेके लिए रामचन्द्रजीके पास भेजा और हनूमान ब्राह्मणका रूप धारण करके रामचन्द्र और लक्ष्मणसे मिले, तब उनके भाषणसे प्रसन्न होकर भगवान् रामचन्द्रने अपने छोटे भाई लक्ष्मणसे कहा:—

तमभ्यभाषत् सौमित्रे सुग्रीव-सचिवं कपिम् ।
वाक्यज्ञं मधुरैर्वाक्यैः स्नेहयुक्त मरिन्दमम् ॥
नानृग्वेद विनीतस्य नायजुर्वेद धारिणः ।
नासामवेद-विदुषः शक्यमेवं विभाषितुम् ॥
नूनं व्याकरणम् कृत्स्न मनेन बहुधा श्रुतम् ।
बहु व्याहरतानेन न किंचिदप शब्दितम् ॥
न मुखे नेत्र योश्चापि ललाटे च भ्रुवोस्तथा ।
अन्येष्वपि च सर्वेषु दोष संविदितः क्वचित् ॥
अविस्तरम सन्दिग्धमविलम्बितमव्ययम् ।
पुरस्थं कण्ठगे वाक्यं वर्त्तते मध्यम स्वरम् ॥
संस्कार क्रम सम्पन्ना मद्भुतामविलम्बिताम् ।
उच्चारयति कल्याणीं वाचं हृदय हर्षिणीम् ॥

—बाल्मीकीय रामायण।

यानी यह संजीवनी-विद्या मनुष्यको अवश्यमेव मरनेसे बचा-नेवाली है, इसीसे इसका नाम संजीवनी पड़ गया है।

कच देवगुरु बृहस्पतिका पुत्र था। जब यह शुक्रके पास विद्या सीखनेके लिए गया, तब असुरोंको यह बात मालूम हो गयी। इस-पर वे नाराज हुए और कचको मार डाला। किन्तु शुक्राचार्यने कचको फिर जीवित कर दिया। इसी संजीवनी विद्याके प्राप्त करनेसे ही कच परम सुन्दरी देवयानीका तिरस्कार करनेमें समर्थ हुआ था।

इसलिए यदि तुम शंकर बनना चाहते हो, तो इस तीसरे नेत्र-को प्राप्त करनेकी चेष्टा करो। अभ्यास और वैराग्य नामके ये दोनों नेत्र हैं. इन्हें सार्थक बनाओ। फिर तीसरा नेत्र जो कि मस्तिष्क में है और जिसका नाम आत्म-ज्ञान है। अपने-आपही खुल जायगा। इस नेत्रके खुलने पर ही मनोविकारोंका नाश होता है। मनोविकारोंके नष्ट होनेपर ही मनुष्य अपना तथा संसार का हित कर सकता है, यह अमिट बात है।

पाठकगण इस बातको अनुसन्धान करनेपर जान सकते हैं कि संसारके इतिहासमें ब्रह्मचर्यके जितने उदाहरण भारतमें मिल-सकते हैं, उतने और कहीं नहीं। शिव और शुक्रके बाद दो और महान् ब्रह्मचारियोंके नाम उल्लेखनीय हैं। क्योंकि भारतके आर्य-साहि-त्यमें इन दोनों महानुभावोंके जीवन-वृत्तान्तसे भी हमें अपूर्व शिक्षा-मिलती है। पहलेका नाम है महावीर हनूमान। इनकी विस्तृत कथा रामायणमें पायी जाती है। यह आजन्म अक्षुण्ण ब्रह्मचारी रहे।

उसी वेगसे देवलोक में चला जाऊँगा। यदि इतना परिश्रम करने-पर भी जगज्जननी जानकीको न पाऊँगा, तो राक्षसोंके राजा रावणको बाँधकर यहाँ ले आऊँगा। या तो मैं कृतकार्य होकर सीताके साथ आऊँगा, या लंकाको समूल नष्ट करके रावणको पकड़ लाऊँगा।"

अब दूसरे ब्रह्मचारी पितामह भीष्म का हाल सुनिये। पहले इनका नाम 'देवव्रत' था। किन्तु पिताके पुनर्विवाहके लिए आजन्म ब्रह्मचारी रहनेकी कठिन प्रतिज्ञा करनेपर इनका नाम 'भीष्म' पड़ गया। बाद वंश-नाश होता देखकर इनकी विमाताने इन्हें विवाह करनेकी आज्ञा दी। व्यासदेवने भी इसके लिए बहुत समझाया-बुझाया; पर मनस्वी भीष्मने अपना प्रण नहीं छोड़ा। इसीसे आज भी किसीको दृढ़व्रती देखकर लोग कह बैठते हैं कि तुमने 'भीष्म-प्रतिज्ञा' कर ली है। लोगोंके कहकर हार जानेपर भीष्मजीने अपना विचार इस प्रकार प्रकट किया :—

त्यजेच्च पृथिवी गन्धमापश्चरसमात्मनः—
ज्योतिस्तथा त्येजद्रूपं वायुःस्पर्शगुणांत्यजेत् ॥
विक्रमं वृत्रहाजह्याद्धर्मं जह्याच्च धर्मराट्।
नत्वहं सत्यमुत्स्रष्टुं व्ययसेयं कथंचन ॥

—महाभारत।

यानी चाहे भूमि अपने गुण गन्धको छोड़ दे, जलमें तरलत्व न रह जाय, सूर्य अपने तेजको छोड़ दें, वायु भी अपने स्पर्श गुणको त्याग दे, इन्द्र पराक्रम-हीन हो जायँ और धर्मराज-धर्मको त्याग

हैं, किन्तु मैं कभी भी अपने प्रणसे विचलित नहीं हो सकता।

इस प्रकार दृढ़व्रती होनेके कारण ही पितामह भीष्मको इच्छा-मृत्यु प्राप्त थी। इसलिए महत्वपूर्ण जीवन बितानेके लिए प्रत्येक मनुष्यको ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये। बिना ब्रह्मचर्यके कुछ भी साधित नहीं हो सकता, यह निश्चित है।

ब्रह्मचर्यके प्रकार

कायेन मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा ।
सर्वत्र मैथुन-त्यागो ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते ॥

—याज्ञवल्क्य

मन, वचन और शरीरसे सब अवस्थाओंमें सदा और सर्वत्र मैथुन-त्यागको ब्रह्मचर्य कहते हैं। यह ब्रह्मचर्य तीन प्रकारका होता है। एक तो शरीरसे मैथुन नहीं करता, दूसरा मनसे नहीं करता और तीसरा वचनसे नहीं करता। किन्तु सच्चा ब्रह्मचारी वही है, जो मन, वचन और शरीर तीनोंसे मैथुन न करे। अर्थात्—मनमें कोई बुरी बात न सोचे, मुखसे अनुचित शब्द न निकाले और शरीरसे बाह्य-पदार्थोंके संसर्गसे इन्द्रिय-तृप्ति न करे। कितने लोग ऐसे हैं, जो कायिक ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं, किन्तु मानसिक और वाचिकका पालन नहीं करते। वे समझते हैं कि कायिक पाप ही, पाप है। किन्तु यह उनकी भूल है। ऐसे लोग बहुत जल्द भ्रष्ट हो जाते हैं। क्योंकि मनुष्य जो कुछ मुखसे

निकालता हैं तथा मानसमें जो कुछ सोचता है, उसका असर पड़े विना नहीं रहता।

इसी प्रकार कुछ लोग वाचिक ब्रह्मचर्यका पालन करनेमें ही अपनी कृतकृत्यता समझते हैं और कितने मानसिकको ही। किन्तु ये सभी भ्रान्त धारणायें हैं। जब तक इन तीनोंसे ब्रह्मचर्यका पालन नहीं किया जाता, तबतक न तो ब्रह्मचर्यका पालन हो हो सकता है और न वह टिक ही सकता है। क्योंकि इन तीनोंमेंसे एकके भी बिगड़नेसे सब चौपट हो जाता है। यद्यपि मानसिक ब्रह्मचर्य सबसे श्रेष्ठ है, तथापि वह भी कायिक और वाचिक ब्रह्मचर्यके बिना पुष्ट नहीं होता। कारण यह कि बाहरी कामोंका असर मानसपर पड़े विना नहीं रहता। ऐसी दशामें जो आदमी मनसे तो कोई बुरी बात नहीं सोचता, सदा विषयोंसे दूर रखनेकी कोशिश किया करता है; किन्तु शरीरको बहकने देता है, वह बहुत जल्द गिर जाता है और मनपर उसका आतंक नहा रह जाता। हाँ यह जरूर है कि मनपर अधिकार कर लेनेपर शरीरकी इन्द्रियाँ नहीं बहकने पातीं, किन्तु पहले इन्द्रियोंको भी हठ पूर्वक रोकनेकी जरूरत पड़ती है। ऐसा न करनेसे मनपर अधिकार हो ही नहीं सकता।

मनुष्यके बन्धन और मोक्षका कारण उसका मन है। ब्रह्मचर्य से विद्याभ्यास करते हुए धीरे-धीरे मनपर अधिकार करना चाहिये। सबसे पहले मनकी ही साधना की जाती है। जिसका मन सध जाता है, उसका शरीर और वचनपर भी अधिकार हो

जाता है। क्योंकि बाहरी जितने काम होते हैं, वे सब मनकी ही प्रेरणासे होते हैं। मनुष्य जो कुछ बोलता है, वह मनकी ही आज्ञासे; जोकुछ काम करता है, वह मनकी ही आज्ञा मिलने पर करता है। मनकी प्रेरणाके बिना इन्द्रियाँ कोई काम कर ही नहीं सकतीं। इसलिए सबसे पहले मनको चारों ओरसे खींचकर विद्या पढ़नेमें लगाना चाहिये। इससे स्वाभाविक ही मन विद्या-व्यसनी होकर सारे अनर्थोंको छोड़ देता है। यदि वह कभी बहके भी, तो तुरन्त उसे खींचकर विद्याभ्यास और ब्रह्मचर्य-पालनमें लगाना चाहिये।

ब्रह्मचर्यकी तुलना

वास्तवमें ब्रह्मचर्यकी तुलनामें संसारकी कोई भी वस्तु रखने योग्य नहीं। क्योंकि ऐसी दयादेय वस्तु संसारमें एक भी नहीं है। वीर्य मनुष्य-शरीरमें सूर्य रूप है। वीर्यके ही प्रतापसे यह शरीर प्रकाशित होता है। इस परमप्रकाशका लोप होते ही शरीरका नाश हो जाता है। यदि यह कहा जाय कि ब्रह्मवर्चस होना सबसे श्रेष्ठ है तो यह उचित नहीं। ब्रह्मवर्चस नाम है, आत्मज्ञानका। हम मानते हैं कि यह बहुतही ऊँची बात है, जबतक ब्रह्मवर्चस सिद्ध नहीं होता, तबतक आत्मा स्वतंत्रतापूर्वक ब्रह्मलोकमें नहीं जा पाती और ब्रह्मलोकमें विचरण करना ही सबसे श्रेष्ठ काम है। इसलिए ब्रह्मवर्चसकी श्रेष्ठता प्रत्यक्ष है। किन्तु ब्रह्मचर्यकी सिद्धिके बिना

कोई मनुष्य ब्रह्मवर्चस हो ही नहीं सकता। अतएव ब्रह्मवर्चस होना भी मनुष्य-जीवनके लिए ब्रह्मचर्यसे अधिक उपयोगिता नहीं रखता।

धर्मके साथ तुलना करनेमें भी वही बात है। केवल ब्रह्मचर्य-के अन्तर्गत सारे धर्मोंका समावेश हो जाता है। महर्षि कणादने लिखा है:—

''यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिःसधर्मः।

—वैशेषिक दर्शन

अर्थात्—जिस यत्नके द्वारा लौकिक और पारलौकिक उन्नति हो, उसे धर्म कहते हैं। दोनों उन्नतियाँ ब्रह्मचर्य द्वारा ही होती हैं। अतः मनुष्यका मुख्यधर्म ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य ही शरीर और आत्माका सर्वस्व है और इसीसे मनुष्यका विकास होता है।

एक बार नारदजीने विष्णुभगवान्से पूछा,—हे भगवन्! वह कौनसी वस्तु है, जो आपको सबसे अधिक प्रिय है।

इसपर भगवान्ने कहा,—हे मुनिवर! मुझे ब्रह्मचर्य-धर्म सबसे अधिक प्रिय है। जो मनुष्य इसका पालन करता है, वह निश्चय ही मुझको प्राप्त होता है। यही कारण है कि महात्मालोग ब्रह्मचर्य-सिद्धिके अतिरिक्त कुछ भी नहीं करते। जीवके लिए ब्रह्मचर्यसे बढ़कर त्रिलोकमें दूसरा धर्म नहीं। यह सुनकर नारद बहुत प्रसन्न हुए।

अब तपको लीजिये। हमारे पूर्वज तपस्याके बलसे ही मनुष्य-मात्रका हित करते और भूमंडलमें अक्षय यश प्राप्त करते थे। इससे

यह शंका होती है कि वह तप क्या है। श्रुति वचन है:—"तपोवै ब्रह्मचर्यम्" अर्थात—ब्रह्मचर्य ही तप है। ब्रह्मचर्य की रक्षाके लिए ही नाना प्रकारकी तपस्यायें की जाती हैं। इसी की साधनासे अष्ट-सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। एकबार भी ब्रह्मचर्य व्रत खंडित हो जानेसे अनेक वर्षका जप-तप नष्ट हो जाता है। क्योंकि वीर्य-रक्षासे ही आत्म-तेज बढ़ता है। उसके नष्ट होनेसे आत्म-तेज भी नष्ट हो जाता है। इसलिए इसकी तुलनामें भी ब्रह्मचर्य ही मुख्य वस्तु है, ब्रह्म-चर्यसे चित्तमें-शान्ति आती है, चित्तकी स्थिरतासेही तपस्या पूरी होती है और परमपदकी प्राप्ति होती है। इसीसे शिवजीने कहा भी है:—

"न तपस्तप इत्याहु ब्रह्मचर्यं तपोत्तमम्।"

—तन्त्रशास्त्र।

अर्थात्—तप कुछ भी नहीं है. ब्रह्मचर्य ही उत्तम तप है।

इसी प्रकार गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने भी कहा है:—

देव द्विज गुरु प्राज्ञ-पूजनं शौच मार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते॥

--श्रीमद्भगवद्गीता।

यानी देव, ब्राह्मण, गुरु और विद्वान्की पूजा, पवित्रता और सरलता तथा ब्रह्मचर्य और अहिंसाको शारीरिक तप कहते हैं।

योगकी उच्चता जगत्प्रसिद्ध है। इसीसे ज्ञानकी प्राप्ति होती है, यही धर्मका रूप है और यही परम तप भी है। ऐसे महत्त्वपूर्ण योगकेविषयमें महर्षि पतंजलिने लिखा है:—

"योगश्चित्त-वृत्ति निरोधः।"

अर्थात् चित्तकी वृत्तियोंको रोकनेका नाम योग है। चित्तकी वृत्तियोंको रोकनेके लिए मनपर अधिकार करना आवश्यक होता है। और मन, बिना ब्रह्मचर्यका पालन किये वश नहीं होता। अतः यहाँ भी ब्रह्मचर्यकी ही प्रधानता है। विषयी मनुष्यको योगकी सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती।

सत्य, ईश्वर रूप है। क्योंकि परमात्मा सत्-चित्-आनन्द-स्वरूप है। सत्यके आधारपर ही पृथिवी स्थित है। यह सत्य संसारका बीजरूप है। जहाँ सत्य है, वहाँ सब कुछ है; जहाँ सत्य नहीं, वहाँ कुछ भी नहीं। लिखा है:—

सत्यमेव जयते नानृतम्
सत्येन पन्थाविततो देवयानः।
येमाक्रमन्तृपयो ह्याप्तकामा
यत्र तत्सत्यस्य परमंनिधानम्॥

अर्थात् सत्यकी ही जय होती है, नकि असत्यकी। सत्यसे ही देवोंका मार्ग मिलता है। ऋषिलोग भी सत्यके प्रभावसे ही सफलता प्राप्त करते हैं, जहाँ सत्यकी सत्ता है, वहाँ सब सुख है।

किन्तु सत्यका पालन करनेके लिए दृढ़ताकी आवश्यकता पड़ती है। निवल आदमी सत्यका पालन कभी नहीं कर सकता। यदि किसी निवल आदमीको कुछ दुष्ट चारों ओरसे घेर लें और यह कहें कि तुम झूठ कहो, नहीं तो हमलोग तुम्हें जानसे मार डालेंगे, तो निवल मनुष्य डरकर सत्यका पालन कदापि नहीं कर

सकेगा। पर सबल मनुष्य निर्भीकता पूर्वक कह बैठेगा, आत्मा अमर है, इसे कोई मारकाट नहीं सकता। रही शरीरकी बात, सो यह तो नाशवान है ही। इसलिए इस भयसे मैं झूठ नहीं बोल सकता—कहूँगा वही जो सत्य होगा। इस प्रकार आत्मबल या दृढ़ता होनेपर ही सत्यकी रक्षाकी जा सकती है। यह दृढ़ता ब्रह्मचर्यद्वारा ही प्राप्त होती है। व्यभिचारी मनुष्यकी आत्मा कभी भी बलवान नहीं हो सकती। क्योंकि वीर्यका नाम ही बल है। वीर्यके बिना बल आवेगा कहाँसे? और बलके बिना सत्यकी रक्षा होगी कैसे? अतएव इसमें भी ब्रह्मचर्यकी ही प्रधानता है।

ब्रह्मचर्यकी इतनी प्रधानता होनेके कारण ही महर्षि अंगिराके पुत्र घोरनामा ऋषिने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा था कि ब्रह्मचारीके लिए कोई भी विशेष कर्म करनेकी आवश्यकता नहीं। उसे चाहिये कि मृत्युके समय यह कहकर मुक्त हो जाय:—

हे प्रभो! आप अविनाशी हैं, एकरस रहनेवाले हैं। आप जीवनदाता तथा सूक्ष्मातिसूक्ष्म हैं। बस इतनेसे ही उसकी मुक्ति हो जायगी, जप, तप, यज्ञ आदि कुछ भी करनेकी आवश्यकता नहीं।

ब्रह्मचर्यसे लाभ

ब्रह्मचर्यसे मेधा-शक्ति बढ़ती है, मनवांछित वस्तुओंकी सरलतासे प्राप्ति होती है, दीर्घ-जीवन होता है, उत्साह बढ़ता है, तन्दु-

रुस्ती ठीक रहती है, संसारमें यश फैलता है, सुन्दर वंश चलता है, रोगोंका नाश होता है, अपूर्व सुख मिलता है और अन्तमें उत्तम गति मिलती है।

पहले मेधाशक्तिको लीजिये। मेधाशक्ति मस्तिष्कमें रहती है। ब्रह्मचारीकी मेधाशक्ति इसलिए तीव्र हो जाती है कि वह वीर्यकी रक्षा करता है। उसके मस्तिष्कमें सदा अच्छे-अच्छे विचार प्रवाहित होते रहते हैं। वीर्यकी रक्षा करनेसे मस्तिष्क बहुत पुष्ट हो जाता है। मस्तिष्कके पुष्ट होनेसे मेधा तीव्र हो जाती है। इसीके प्रतापसे ऋषिलोग इतने बड़े मेधावी और विद्वान् होते थे कि बड़े-बड़े ग्रन्थोंको एकबार सुनकर ही कंठ कर लेते थे। उनके पास नाना प्रकारकी विद्यायें और कलायें थीं। किन्तु हम थोड़ीसी बातें याद करके भी भूल जाते हैं। सौ-सौ बारकी रटी हुई पंक्तियाँ भी अवसरपर याद नहीं आतीं। इसका कारण यही है कि ब्रह्मचर्य ठीक न होनेके कारण हमारी मेधा-शक्ति बिलकुल निबल पड़ गयी है।

ब्रह्मचर्यके प्रभावसे ही जब हनूमानजी सूर्य भगवान्के पास वेद पढ़नेके लिए गये, तब उन्होंने कहा कि, हमें पढ़ानेमें कोई आपत्ति नहीं, किन्तु मैं जो कुछ कहूँगा, उसकी पुनरावृत्ति न करूँगा। ऐसी दशामें तुम्हें कोई लाभ न होगा, क्योंकि एकबार सुनकर ग्रहण कर लेना कठिन है। इसके अलावा तुम्हें हमारे रथके साथ-साथ दौड़ते हुए पढ़ना पड़ेगा—सो भी आगे मुख करके नहीं। क्योंकि मुख तो पढ़नेके लिए हमारी ओर रखना पड़ेगा। महावीरने यह बात मान ली और सूर्यके द्रुतगामी रथके साथ-साथ विद्या पढ़ते

हुए उलटे पाँव दौड़ते अस्ताचलतक गये। फिर सूर्यने परीक्षा ली। उन्होंने दिनभरके पढ़े हुए मंत्रोंको कह सुनाया। यह है ब्रह्मचर्यका प्रताप।

वीर्यकी उत्पत्ति

मनुष्य-शरीरमें जो सार-तत्त्व है, उसीको वीर्य कहते हैं। वीर्यकी रक्षा करनेवालोंका शरीर शुद्ध तथा मन प्रसन्न रहता है। वैद्यक-शास्त्रने जीवनका मूल-तत्त्व इस वीर्यको ही माना है। यह वीर्य, आहारका अन्तिम तत्त्व है। आयुर्वेदका मत है:—

रसाद्रक्तं ततोमांसं मांसान्मेदः प्रजायते।
मेदस्यास्थिस्ततो मज्जा मज्जायाः शुक्र सम्भवः॥
—शुश्रुताचार्य।

अर्थात्—भोजनके पचनेपर रस, रससे रक्त, रक्तसे मांस, मांससे मेद, मेदसे अस्थि, अस्थिसे मज्जा और मज्जासे वीर्य पैदा होता है। रससे लेकर मज्जातक प्रत्येक धातु पाँच रात-दिन और डेढ़ घड़ीतक अपनी अवस्थामें रहती है। बाद तीस दिन-रात और नौ घड़ीमें रससे वीर्य बनता है, ऐसा भोज तथा अन्य आयुर्वेदके आचार्योंने लिखा है। स्पष्ट रीतिसे यों समझना चाहिये कि मनुष्य जो कुछ आज भोजन करता है, उसका वीर्य बननेमें पूरा एक महीना लगता है। इसी प्रकार और इतने ही समयमें स्त्री-शरीरमें रज तैयार होता है।

इस वीर्यके अधीन ही शारीरिक और मानसिक सारी शक्तियाँ रहती हैं। इसीके प्रभावसे ब्रह्मचारियोंका शरीर बल-वीर्यसे पूर्ण, सुन्दर, हृष्ट-पुष्ट तथा पवित्र देखा जाता है। व्यभिचारी पुरुष क्षणिक सुखके लिए अपने वीर्यका नाश कर डालते हैं, अतः उनका शरीर निस्तेज, निर्बल, कुरूप तथा बुद्धिहीन हो जाता है। वीर्य-नाशसे ही मनुष्यकी मृत्यु भी शीघ्र हो जाती है।

एक महीनेमें वीर्य तैयार होता है, इसीसे आचार्योंने एक महीनेसे पहले मैथुनका निषेध किया है। क्योंकि इससे पहले वीर्यके बाहर निकलनेसे सब धातुओंमें क्षीणता आ जाती है। धातुओंमें क्षीणता आ जानेसे शरीरके सब अंग निबल हो जाते हैं, और अनेक तरहके रोग आ घेरते हैं। जो मनुष्य इसकी चिन्ता न करके बराबर वीर्य निकालता जाता है, उसका वीर्य कभी भी परिपक्व नहीं हो पाता। ऐसी दशामें उससे उत्पन्न होनेवाली सन्तान भी निबल, अल्पायु और श्रीहीन होती है।

साधारणतया वीर्यके पकनेका यही समय है, किन्तु शरीरके बलाबलसे कुछ पहले और पीछे भी इसका पकना सम्भव है। एक-मासमें जो रज या वीर्य तैयार होता है, वह अत्यन्त जीवनी-शक्तिसे भरा हुआ होता है। इस अमूल्य रत्नको केवल गर्भाधानके अभि-प्रायसे ही शरीरसे बाहर निकालना उचित है। यदि इसको आवश्य-कता न हो तो कभी भी शरीरसे पृथक् नहीं करना चाहिये।

यह वीर्य मनुष्यके शरीरभरमें प्रसरित रहता है, किन्तु इसका मुख्य स्थान मस्तिष्क है। कुछ लोगोंका कहना है कि ४० ग्रास

आहारसे १ बूँद रक्त और ४० बूँद रक्तसे १ बूँद वीर्य तैयार होता है। वैज्ञानिकोंका मत है कि २ तोला वीर्यके लिये १ सेर रक्त और एकसेर रक्तके लिए १ मन आहारकी आवश्यकता होती है। जो भी हो यह बात सर्व-सम्मत है कि वीर्य बहुत ही कम मात्रामें तैयार होता है और उसका प्रभाव शरीरके सब अंगोंपर रहता है। वीर्यसे ही इन्द्रियोंमें शक्ति रहती है, इसके बराबर मूल्यवान् पदार्थ वसुधामें कोई नहीं है। ऐसे पदार्थकी अवहेलना करनेके समान मूर्खता और क्या हो सकती है?

अब यह बात सहज ही समझमें आ सकती है कि यदि नीरोग मनुष्य सेरभर अन्न रोज खावे तो ४० सेर अन्न वह चालीस दिनमें खा सकेगा। अतएव यह सिद्ध हुआ कि चालीस दिनकी कमाई दो तोला वीर्य है। इस हिसाबसे ३० दिनकी कमाईमें केवल डेढ़ ही तोला वीर्य प्राप्त होता है। ऐसे पदार्थको शरीरसे निकाल देना कितना बड़ा अनर्थ है। इसपर लोग पूछ सकते हैं कि जब यह इतना कम तैयार होता है, तब रात-दिन विषय करनेवालोंके शरीरमें यह आता कहाँसे है? प्रश्न बहुत ही ठीक है, किन्तु इसमें बात यह है कि हम पहले ही कह आये हैं कि मनुष्यके शरीरमें वीर्य सदा कुछ-न-कुछ बना रहता है। यदि वीर्य शेष हो जाय, तो शरीर जीवित ही नहीं रह सकता। दूसरी बात यह भी है कि ऐसे मनुष्योंका वीर्य अपने असली रूपमें आनेके पहले ही निकलता जाता है, इसलिए उनके वीर्यको वीर्य कहना ही अनुचित है।

यह वीर्य पुरुष-शरीरमें सोलह वर्षकी अवस्थामें प्रकट होता है।

इससे पहले वीर्य नहीं रहता, यह नहीं कहा जा सकता। क्योंकि वीर्य के बिना तो शरीर टिक ही नहीं सकता। इससे पहले रहता अवश्य है, पर प्रकट इसी अवस्थामें होता है। यह काल वीर्यके प्रकट होनेका है, परिपक्व होनेका नहीं। पचीस वर्षकी अवस्थामें यह परिपक्व होता है। जो लोग इसे पूर्ण रीतिसे सुरक्षित रखते हैं, उन्हींका वीर्य इस अवस्थामें परिपक्व होता है, और जो लोग प्रकट होते ही नष्ट करने लगते हैं, उनलोगोंका वीर्य तो कभी परिपक्व होता ही नहीं। यही कारण है कि पचीस वर्षकी अवस्थातक वीर्यकी पूरी रक्षा करनेके लिए या ब्रह्मचर्यका पालन करनेके लिए आचार्योंने कहा है। इसके पहले वीर्य अपरिपक्वावस्थामें रहता है। जो लोग वीर्यको परिपक्व नहीं होने देते और उसका दुरुपयोग करने लगते हैं, वे अपने जीवनको ही अन्धकारमय बना देते हैं। ऐसे लोग आजन्म अकर्मण्य, पौरुषहीन तथा दुखी बने रहते हैं। प्रसन्नता तो ऐसे लोगोंके पास कभी फटकने भी नहीं पाती। किन्तु दुःखकी बात है कि आजकल मूर्खताके कारण हिन्दूसमाजमें पचीस वर्षकी अवस्थातक लोग ४-६-८ बच्चोंके बाप बन जाते हैं, और उन बच्चोंकी मृत्युसे अथवा रुग्णतासे बिलखते नजर आते हैं।

दूसरा प्रकरण

अष्ट-मैथुन

जिन उपायोंसे वीर्य-नाश होता है, उन्हें मैथुन कहते हैं। इसलिए ब्रह्मचारियोंको मैथुनसे बचना चाहिये। यह मैथुन आठ प्रकारका होता है:—

स्मरणं कीर्त्तनंकेलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणं ।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रिया-निष्पत्तिरेवच ॥
एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदन्ति मनीषिणः ।
विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्ट लक्षणम् ॥

—दक्षसंहिता।

स्मरण, कीर्त्तन, केलि, अवलोकन (दृष्टिपात), गुप्त-भाषण, संकल्प, अध्यवसाय, और क्रिया-निष्पत्ति, इन आठ प्रकारके मैथुनोंका वर्णन शास्त्रकारोंने किया है। अब इन आठोंका विवरण पृथक्-पृथक् नीचे लिखा जाता है:—

१—स्मरण—किसी जगह पढ़े हुए, देखे हुए, सुने हुए या चित्रमें देखे हुए स्त्री-रूपका ध्यान, चिन्तन या स्मरण करना।

२—कीर्त्तन—स्त्रियोंके रूप, गुण, और अंगोंकी चर्चा करना अथवा इस विषयके गीत गाना तथा गन्दी बातें करना आदि।

३—केलि—स्त्रियोंके साथ खेलना, जैसे फाग, ताश आदि। अथवा उनके साथ अधिक बैठना-उठना और मनोविनोद करना।

४—प्रेक्षण—किसी स्त्रीको नीच-दृष्टिसे या छिपकर बार-बार देखना तथा नीचतापूर्ण संकेत करना।

५—गुह्य-भाषण—स्त्रियोंके पास बैठकर गुप्त बातें करना, शृङ्गार-रस-पूर्ण उपन्यास, कहानियाँ, नाटक आदि पढ़ना या उनकी चर्चा करना, काम-चेष्टासे भरी हुई बातें कहने-सुननेमें निमग्न रहना।

६—संकल्प—किसी अप्राप्य स्त्रीकी प्राप्तिके लिए दृढ़ होना तथा मनमें उसे पानेके लिए निश्चय करना।

७—अध्यवसाय—स्त्री-सहवासमें आनन्दका अनुभवकर उसके पानेके लिए प्रयत्न-शील होना।

८—प्रत्यक्ष सम्भोग करके वीर्य स्खलित करना।

आदर्श ब्रह्मचारियोंमें इन आठमेंसे एक का भी होना बड़ा ही हानिकारक है। इनमें से एक भी आदत रहनेसे ब्रह्मचारी नष्ट हो जाता है। इनमेंसे एक भी मैथुनमें फँस जानेसे मनुष्य आठों मैथुनोंमें फँस जाता है। मैथुनोंके प्रभावसे वीर्यके कण अपने स्थानसे च्युत होकर अण्डकोषमें आ जाते हैं और फिर वे किसी-न-किसी प्रकार, स्वप्नमें या पेशाबके साथ—बाहर निकल जाते हैं।

इनके अतिरिक्त दो तरहके मैथुन और हैं, जो अत्यन्त

घृणित, अत्यन्त हानिकारक और जघन्य हैं। उनमें एकका नाम है, हस्त-मैथुन और दूसरेका नाम है, गुदा-मैथुन।

हस्त-मैथुन

स्त्री-प्रसंग तो सृष्टि-विज्ञानके अनुकूल माना गया है; किन्तु हस्त-मैथुन अप्राकृतिक है। डाक्टर हिलका कहना है:—"हस्त-मैथुन वह तेज कुल्हाड़ी है, जिसे अज्ञानी युवक अपने ही हाथों अपने पैरोंमें मारता है। उस अज्ञानीको तब चेत होता है, जब हृदय, मस्तिष्क और मूत्राशय आदि निर्बल हो जाते हैं, तथा स्वप्नदोष, शीघ्र-पतन, प्रमेह आदि दुष्ट रोग आ घेरते हैं और जननेन्द्रिय छोटी, टेढ़ी, कमजोर होकर गृहस्थ-धर्मके अयोग्य हो जाती है।"

आजकल नवयुवकोंमें यह हस्त-मैथुन भीषण रूपसे फैला हुआ है। इस मैथुनसे बालकोंका सब-कुछ चौपट हो जाता है। इस दुर्व्यसनका प्रचार नवयुवक विद्यार्थी तथा अविवाहित पुरुषोंमें विशेषतर हो रहा है। एकबार जो इसके चक्करमें पड़ जाता है, वह जन्मभर इस संहारकारीके फन्देसे नहीं छूट पाता। दुःखकी बात है कि आजकल यह रोग बड़े-बड़े विद्वानोंमें भी फैला हुआ है। हस्त-मैथुन एक ऐसा राक्षस है जो बड़ी निर्दयतासे मनुष्य-शरीरको निचोड़ डालता है। इससे इतनी हानियाँ होती हैं कि उनका उल्लेख करनेसे एक छोटीसी पुस्तिका तैयार हो सकती है।

इसलिए यहांपर संक्षिप्त वर्णन ही करके नवयुवकोंको सावधान कर दिया जायगा। जिस प्रकार किसी लकड़ीमें घुन लग जानेसे वह बिलकुल खोखली हो जाती है, उसी प्रकार इस अधम कुटेवसे मनुष्यकी अवस्था जर्जरित हो जाती है। इससे इन्द्रियकी सब नसें ढीली पड़ जाती हैं। फल यह होता है कि स्नायुओंके दुर्बल होनेसे जननेन्द्रियका मुख मोटा हो जाता है तथा उसकी जड़ पतली पड़ जाती है। इन्द्रिय-शिथिलताके कारण वीर्य बहुत जल्द गिर जाता है, बार-बार स्वप्नदोष होने लगता है, ज़रा भी विषय सम्बन्धी बातें मनमें उदय होते ही वीर्य गिरने लगता है और अन्तमें कुछ दिनोंके बाद भरी-जवानीमें ही मनुष्य नपुंसक होकर बुढ़ापेका अनुभव करने लगता है। ऐसा मनुष्य स्त्री-समागमके सर्वथा अयोग्य हो जाता है। उसका वीर्य पानीकी तरह इतना पतला पड़ जाता है कि स्वप्नदोषके बाद वस्त्रपर उसका दागतक नहीं दिखायी देता।

हस्त-मैथुनसे इन रोगोंका होना अनिवार्य है—लिंगेन्द्रियकी निबलता, दृष्टिकी कमी, तृषा, मन्दाग्नि, स्वप्नदोष, बुद्धि-नाश, कोष्ठ-बद्धता, मस्तक-पीड़ा तथा प्रमेह। इनके अलावा मृगी, उन्माद, क्षय, नपुंसकता, आदि रोग भी होनेकी पूरी सम्भावन रहती है और सौमें नब्बे आदमी इन रोगोंके शिकार होते देखे गये हैं। पागलखानोंमें १०० में ९५ आदमी व्यभिचार और हस्त-मैथुनहीके कारण पागल बने पाये जाते हैं। यही दशा अपनी स्त्रीसे अधिक भोग करनेवालोंकी भी हुआ करती है।

यों तो व्यभिचारमात्र ही बुरा है, पर यह हस्तमैथुन सबसे बुरा है। हस्तमैथुन द्वारा वीर्यके निकलनेसे कलेजेपर बड़े जोरोंका धक्का लगता है। इस धक्केसे खाँसी, श्वास, यक्ष्मा जैसे भयानक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इस रोगसे मनुष्यकी आयु इतनी क्षीण होती है कि उसका लेखा लगाना भी कठिन है। अज्ञानताके कारण तथा बुरी संगतिमें पड़ जानेसे बालक इस दुष्कर्ममें फँस जाते हैं। पहले तो इससे उन्हें आनन्द मिलता है, किन्तु कुछ ही दिनोंमें वे अपनी मूर्खतापर अफसोस करने लगते हैं। क्योंकि इससे जो रोग पैदा होते हैं, वे लाखों प्रयत्न करनेपर भी आजन्म नहीं मिटते।

इससे मस्तिक बहुत जल्द कमजोर पड़ने लग जाता है। मस्तिष्क कमजोर पड़ते ही आँखोंकी ज्योति तथा कान व दाँतकी शक्ति भी कमजोर पड़ जाती है। असमयमें ही बाल भी झड़ने और पकने लगते हैं। हस्तमैथुनसे सारा शरीर पीला, ढीला, दुर्बल, रोगी, सुस्त और कान्तिहीन हो जाता है। फिर तो ऐसे लोगोंको विषयमें भी आनन्द नहीं मिलता, यद्यपि उस आनन्दकी चाहसे वे विषय करना नहीं छोड़ते। ऐसे लोगोंकी स्त्रियाँ कभी भी सन्तुष्ट नहीं होतीं और झुँझलाकर व्यभिचारिणी बन जाती हैं।

गुदा-मैथुन

पुरुषके साथ पुरुषका सम्भोग करना गुदामैथुन कहलाता है। यह भी हस्तमैथुनके समान ही निन्द्य और हानिकारक क्रिया है।

एक विद्वान्‌का कथन है कि इन दोनों मैथुनोंके जन्मदाता पश्चिमी देशवाले ही हैं। जो भी हो, हमें इन बातोंसे क्या काम! यहां सिर्फ यह दिखलानेकी आवश्यकता है कि इससे क्या हानियाँ होती हैं।

यह दुर्व्यवहार अधिकतर अबोधमति १०-१२-१४ वर्षके बालकोंके साथ किया जाता है। किन्तु कितने मनुष्य ऐसे होते हैं जो वृद्ध हो जानेपर गुदाभंजन कराना नहीं छोड़ते। यह दोष अविवाहित पुरुषों और विद्यार्थियोंमें बेतरह फैला हुआ है। किन्तु इससे यह न समझ बैठना चाहिये कि विवाहित पुरुष इससे बरी हैं। ऐसे बहुतसे मनुष्य देखनेमें आते हैं, जो घरमें स्त्रीके रहते हुए भी इस दुर्गुणमें फँसे रहते हैं तथा रात-दिन बालकोंके फँसानेकी कोशिश करनेमें ही व्यस्त रहते हैं।

यह भी हस्तमैथुनके समान ही मनुष्यके जीवनको नाश करनेवाला रोग है। इसके कारण मनुष्य बल-रहित हो जाता है, समाजमें अपमानित होकर रहता है, सन्तान-उत्पन्न करनेकी शक्ति मारी जाती है, चित्त सदा खिन्न रहता है और वे सब रोग आ घेरते हैं जो हस्तमैथुनके कारण पैदा होते हैं। गुदामैथुन करनेवाले नरपिशाचोंको गर्मी-(उपदंश) की बीमारी भी हो जाया करती है। यह रोग कितना भयानक होता है, यह बतलानेकी जरूरत नहीं। ऐसे नीच मनुष्य अपने जीवनका सर्वनाश तो करते ही हैं, साथमें उन बालकोंके जीवनको भी बर्बाद कर डालते हैं, जिन्हें अपने चंगुलमें फँसाते हैं। इसलिए यह कहना अधिक उपयुक्त

होगा कि यह कर्म हस्तमैथुनसे भी अधिक निकृष्ट और पापपूर्ण है क्योंकि उससे तो सिर्फ अपना ही नाश होता है और गुदामैथुनसे तो दूसरेका भी सर्वनाश किया जाता है। फिर वह बालक, जिसको तुम अपने चंगुलमें फँसाकर अपनी इच्छा पूर्ण करते हो और उसे गुदामैथुन करना सिखला देते हो—बड़ा होनेपर कितने ही बालकोंको चौपट करके पाप बटोरता है और तुम्हें भी हिस्सा देता है; क्योंकि मूल कारण तुम्हीं हो।

हाय! यह कर्म कितना नीचतापूर्ण है! हमारा तो अनुमान है कि गुदामैथुन करनेवाले लोग हत्याकारियोंसे भी बढ़कर पापी, क्रूर और नीच होते हैं। हत्याकारी तो क्षणभरमें जान ले लेता है, किन्तु ये राक्षस तो जानसे मारते ही नहीं. बालकोंमें ऐसी कुटेव डाल देते हैं कि वे बेचारे जन्मभर घुलघुलकर मरते हैं, तड़पते हैं, कष्ट सहते हैं। प्राण ले लेना अच्छा है, पर इस तरह घुला-घुलाकर मारना बड़ा ही दुःखदायक है। जो अभागा इन दोनों लतोंमें या इनमें से एकमें एकबार भी फँस जाता है, फिर वह जन्मभर छुटकारा नहीं पाता; ये शैतान हाथ धोकर उसके पीछे पड़ जाते हैं। क्योंकि ऐसे मनुष्योंका चित्त निर्बल हो जाता है, इसलिए छोड़नेकी इच्छा मनमें उत्पन्न होनेपर भी वे अपने मनको वशमें नहीं कर सकते। हजारों प्रतिज्ञायें करनेपर भी अपनेको नहीं रोक सकते। विषयोंके सामने आते ही सारी प्रतिज्ञायें ताकमें धरी रह जाती हैं।

इस प्रकार वीर्यको नष्ट करनेसे मनुष्यका मनुष्यत्व ही लोप

हो जाता है। ऐसे लोग इतने कमजोर हो जाते हैं कि थोड़ी भी गर्मी या सर्दी लगते ही बीमार पड़ जाते हैं, रात-दिन बीमार ही रहा करते हैं। कोई भी नयी बीमारी पहले ऐसे ही लोगोंमें फैलती है।

किन्तु दुर्भाग्यकी बात है कि ये सब बुराइयाँ बहुधा उन स्थानोंमें पैदा होती हैं, जो हमारी शिक्षाके स्थान हैं। जिन शिक्षालयोंमें बच्चे चरित्रवान् बनने तथा कर्मनिष्ठ होनेके लिए भर्ती होते हैं, उन शिक्षालयोंमें उन्हें मुख्यतया इन्हीं बुराइयोंकी शिक्षा मिलती है। आजकलके शिक्षालय ही भक्ष्यालय बन रहे हैं। लड़कोंको या बड़े विद्यार्थियोंको कौन कहे, इन दुर्गुणोंको कितने अध्यापक ही छात्रोंको सिखला देते हैं। ऐसे अध्यापकोंको किन शब्दोंमें सम्बोधित किया जाय, समझमें नहीं आता। जिनके ऊपर बच्चोंकी सारी जिम्मेदारी हो, वे ही यदि कर्त्तव्यभ्रष्ट होकर नीच हो जायँ, तो यह बड़े ही दुर्भाग्यकी बात है। इसपर 'प्रताप'-सम्पादक श्रीगणेश शंकर विद्यार्थीजीने ता० ८ जुलाई सन् १९१८ के 'स्कूलों और कालेजोंमें दुराचार' शीर्षक अग्रलेखमें बड़ा अच्छा प्रकाश डाला था। अतः उस लेखको हम ज्योंका त्यों यहां उद्धृत करते हैं:—

"मनुष्य शिश्नोदर-सम्बन्धी वासनाओंका पुञ्ज है। इन्द्रिय सम्यक् रूपसे उसके काबूमें नहीं है। प्रयत्नशील मुमुक्षुका मन भी इन्द्रियोंकी व्याधियोंसे विचलित हो जाता है। मनुष्य-स्वभावकी यह दुर्बलता बड़ी दयनीय है। इस दिशामें अथक परिश्रम करने-

वाले लोगोंने मानव-समाजके सामने इस विषयकी कठिनताओंका निरूपण बड़े स्पष्ट रूपसे किया है। भगवान् कृष्णने गीतामें कहा है कि इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करनेवाले नरोंका मन भी समय-समयपर इन्द्रियोंद्वारा आकृष्ट कर लिया जाता है, "इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः!" मनोनिग्रहका केवल एक ही उपाय है। वह है सतत अभ्यास और वैराग्य। 'अभ्यासेन तु कौन्तेय, वैराग्येण च गृह्यते।' किन्तु आजकल भारतवर्षके दुर्भाग्यसे हमारे यहाँ जिस शिक्षाका प्रचार है, उसमें युवकोंके चरित्र-गठनकी ओर रंचमात्र भी ध्यान नहीं दिया जाता। संयम, मनोनिग्रह, शारीरिक बल-बर्द्धन और चरित्र-दृढ़ताको हमारे शिक्षाक्रममें कोई स्थान नहीं दिया गया है। यही कारण है कि हमारे नौजवानोंका आचरण बहुत ढीला-ढालासा रहता है। हमारी वर्त्तमान शिक्षा-संस्थाओंमें बहुत दिनोंसे एक घातक रोग फैल गया है। बालक और युवक एक दूसरेके साथ, नितान्त अवाञ्छनीय रीतिसे, मिलते-जुलते और मैत्री-सम्बन्ध स्थापित करते नजर आते हैं। शिक्षा संस्थाओंके कई अध्यापकगणोंकी चित्तवृत्ति भी चिनगारियोंके साथ खिलवाड़ करती नजर आती है। जिन लोगोंने शिक्षालयों, जेलखानों, बोर्डिंग हाउसों और सिपाहियोंके रहनेके बेरेक घरोंका ध्यानपूर्वक निरीक्षण किया है, उनका कहना है कि पुरुषोंके बीच आपसी कामुकता इन स्थानोंमें बहुत अधिक परिमाणमें पायी जाती है। पाश्चात्य विद्वानोंने इस सम्बन्धमें बहुत कुछ लिखा है। एडवर्ड कारपेन्टर, जे० ए० साइमान्डस, वाल्टविटमेन, हेवलाक

एलिस आदि मनस्वियोंने मानव-स्वभावकी इस कमजोरीका विवेचन करते समय यह दिखला दिया है कि सुधारकोंको इस दिशामें बहुत सोच-समझकर काम करना चाहिये। स्कूलों और कालेजों तथा उनके छात्रावासोंमें जो बालक शिक्षा पाते तथा निवास करते हैं उनके आचरणकी ओर ध्यान देना समाजका मुख्य कर्त्तव्य है। आजकल समाजके अज्ञानके कारण हमारे छोटे-छोटे निरपराध सुन्दर बच्चे दुष्ट-प्रकृति-मित्रों और पापी शिक्षकोंकी कामवासनाके शिकार हो रहे हैं। बालकोंके ऊपर जिस रीतिसे बलात्कार किया जाता है उसका थोड़ासा विवरण यहाँ देना असामयिक न होगा। जिन सौ पचास स्कूल कालेजोंके निरीक्षण करनेका हमें अवसर मिला है, उन्हींकी परिस्थितियोंके अवलोकनसे प्राप्त अनुभवके बलपर हम ये सतरें लिख रहे हैं। प्रत्येक स्कूल या कालेजमें कुछ ऐसे गुंडे विद्यार्थियोंका समुदाय रहता है, जो सुन्दर बालकोंकी टोह लिया करता है। जब वे पहले-पहल स्कूलमें आते हैं, तब बदमाश-मण्डली उन्हें तंग करना, मारना-पीटना, उनकी किताबें छीनना एवं प्रत्येक रीतिसे उनका जीवन भार-भूत बनाना प्रारम्भ कर देती है। बिचारा लड़का कहीं खड़ा है और उसे एक चपत जमा दी। कहीं उसकी किताब फाड़ फेंकी, तो कहीं उसकी कलम छीन ली। पहली छेड़छाड़ इस तरह शुरू होती है। लड़का विचारा मास्टरोंसे शिकायत भी करे तो उससे क्या? शैतान-मण्डली उसे डराती-धमकाती है। उससे कहा जाता है—'अच्छा बचाजी, निकलना बाहर, देखो कैसी मिट्टी पलीद करते हैं तुम्हारी।' असहाय

बलि-पशु इस प्रकार रोज-ब-रोज सताया जाता है। धीरे-धीरे वह इन शैतानोंसे छुटकारा पानेके लिए उन्हींके गुट्टमें शरीक हो जाता है। बस, जहाँ वह इस प्रकार उस गुट्टमें शरीक हुआ कि उसका सर्वनाश प्रारम्भ होता है। जिस स्कूलमें शिक्षक भी उसी फ़नके हुए, उस स्कूलमें तो बालकोंके नैतिक जीवनकी मृत्यु ही समझिये। दुष्ट साथियों और शैतान मास्टरोंकी कामवासनाका साधन बना हुआ बालक अपनी दुरवस्था कहे तो किससे कहे? माता-पिताओंसे? भला किस बालककी इतनी हिम्मत है कि वह अपने माता-पितासे ये कष्टदायक बातें कहेगा? बालकोंके निन्नानवे फ़ी सदी रक्षकगण इतने मूर्ख होते हैं कि वे इन बातोंको समझ ही नहीं सकते। यदि उनके कानमें कभी कोई ऐसी बात पड़ भी जाती है, तो वे बजाय इसके कि अपने बालकोंके साथ अत्याचार करनेवालोंकी खाल खींच लें, उल्टा वे अपने बच्चोंहीको पीटते हैं! बच्चोंके लिए तो एक तरफ खाई और एक तरफ कुँओंकीसी समस्या हो जाती है। इसलिए वे अपना दुःख किसीसे नहीं कहते। समाजकी क्रूरतामयी उदासीनता, एवं घृणित मित्रोंके पापाचारसे प्रताड़ित युवक अपने मनुष्यत्वको नष्ट करके अपने भाग्यको कोसा करते हैं। जो बालक इस प्रकार सताये जाते हैं, उनकी वीरता, दृढ़ता, यौवनकी उन्मत्त धीरता और मनुष्यत्वका सर्वनाश हो जाता है। वे रात-दिन जननेंद्रिय सम्बन्धी विषयोंका चिन्तन किया करते हैं। उनकी संजीवनी शक्तिका ह्रास हो जाता है। उनका पठन-क्रम अस्त-व्यस्त हो जाता है। प्रस्फुटित तीव्र स्मरण

शक्ति नष्ट हो जाती है। मनुष्य-समाजको अमूल्य रत्न प्रदान करनेकी क्षमता रखनेवाली मेधा-शक्ति बूँद-बूँद टपककर धूलमें मिल जाती है। जो मनस्वी हो सकते, जो उदात्त विचारक बनते, जो अमर गायक होते, जो समय-चक्रपर आरूढ़ होकर अपनी मनचीती दिशामें उसे घुमा सकते, वे मानव-समाजके भावी नेतागण जीवनके प्रारम्भके प्रथम क्षणोंमें ही बर्बरता, नृशंसता, दुश्चरित्रता और दौरात्म्यकी ज्वालामें झुलसकर मृतप्राय हो जाते हैं। हमारे पास इस समय स्कूल-कालेजोंकी आचरणहीनताको दरसानेवाली कोई ऐसी सप्रमाण तालिका नहीं है, जिसके आधारपर हम इस भयानक महामारीकी सर्वव्यापकताका दावा कर सकें। लेकिन सत्यान्वेषणका तरीका संख्याशास्त्रके अलावा और कुछ भी है। वह है अपनी आन्तरिक अनुभव-शक्ति। उसीके बलपर हम अत्यन्त निर्भीकता पूर्वक यह कहते हैं कि आजकल हमारे अधिकांश विद्यालय इस रोगसे आक्रान्त हैं। अभीतक इस विषयकी ओर किसीने ठीक तरीकेसे, समाजका ध्यान नहीं खींचा। इस विषयका साहित्य लिखा जरूर गया है। लेकिन उससे सामाजिक सद्भावनाके जागरणमें जितनी सहायता मिलनी चाहिये थी, उतनी नहीं मिल सकती। सामाजिक जीवनके इस अंगका चित्रण करनेके लिए ऐसे साहित्यकी जरूरत है, जो समाजको तिलमिला दे, लेकिन उसे उस प्रकारकी वासनाओंकी ओर झुकानेका काम न करे। बदमाशकी बदमाशियोंका चित्रण ऐसा सरस और मोहक न हो कि बदमाशियोंकी ओर रुझान हो जाय। जरूरत तो है

समाजके हृदयको जलानेको, नकि उसे गुदगुदानेको । लेकिन जबतक समाजकी आँखें नहीं खुलतीं, तबतकके लिए क्या यह महत्वपूर्ण प्रश्न योंही छोड़ दिया जाय? नहीं। इसका प्रतिकार करनेकी आवश्यकता है। माता-पिताओंका यह कर्त्तव्य है कि वे अपने बालकोंके प्रति इस सम्बन्धमें अत्यन्त सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करें। बालकोंके मनसे यह भय निकल जाना चाहिये कि उनकी कष्ट-कथा यदि उनके अभिभावक सुनेंगे, तो वे उलटा उन्हींको दण्ड देंगे। जबतक बच्चोंके दिलमें यह भय है, तबतक वास्तविक परिस्थितिका पता लगाना असम्भव है! बालकोंके रक्षकोंका कर्त्तव्य है कि वे अपने बच्चोंमें अपने स्वयं के प्रति पूर्ण विश्वास और प्रेमके भाव प्रेरित करें। सरकार यदि चाहे तो, इस विषयमें, बहुत कुछ सहायक हो सकती है। हमारे पास अक्सर ऐसे सम्वाद आते रहते हैं, जिनमें डिस्ट्रिक्ट बोर्डोंके शिक्षकोंकी दुश्चरित्रताका उल्लेख रहता है। इस प्रकारके शिकायत-पत्रोंका बराबर आते रहना शिक्षा संस्थाओंके दूषित होनेका लक्षण है। प्रारम्भिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षा-संस्थाओं तथा छात्रावासों के अध्यापकों, निरीक्षकों और छात्रोंमें प्रचलित दुर्गुणों और दुराचारोंकी जाँच करना तथा अनाचारोंको निर्मूल करनेके साधनोंकी सिफारिश करनेके सम्बन्धमें प्रान्तीय सरकार एक कमेटी बनाकर इस प्रश्नकी गुरुता और व्यापकताका ठीक-ठीक पता लगा सकती है। बिहार और उड़ीसाकी सरकारने सन् १९२१ ई० में प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षाके प्रश्नपर विचार करनेके लिए

एक कमेटी बैठाली थी। उस कमेटीकी एक उपसमितिने स्कूलोंके सदाचारके प्रश्नपर विचार किया था। उस कमेटीने इस सम्बन्धमें अपनी जो रिपोर्ट पेश की है, उसका विवरण हम किसी अगले लेखमें देंगे। इस समय तो हम केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि बिहार सरकारकी तरह यदि यू० पी०, सी० पी०, पंजाब, आसाम, बंगाल आदि प्रान्तोंकी सरकारें भी इस प्रश्नको व्यापकताका पता लगानेका प्रयत्न करें, तो बड़ा भारी काम हो सकता है। यह प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण है। सार्वजनिक सदाचारके प्रश्नोंपर लिखनेवालोंके कन्धोंपर बड़ी जबर्दस्त जिम्मेवारी होती है। सम्भव है हमारे पाठकोंको यह प्रश्न—किंवा इसपर कुछ लिखना और इसकी खुले खजाने चर्चा करना—अश्लील जँचे; लेकिन बालकोंकी रक्षाके लिए जो चिन्ताशील हैं, वे इस ओर जरूर आकृष्ट होनेकी दया दिखाएँगे। हम प्रारम्भिक, माध्यमिक और हाई स्कूलके हेडमास्टरों, कालेजके प्रिन्सपलों तथा इस प्रश्नको सुलझानेकी चिन्ता करनेवाले अन्य विद्वज्जनोंसे इस सम्बन्धमें विचार करने तथा इस दुर्गुणसे मुक्ति पानेका उपाय सोचनेकी प्रार्थना करते हैं।"

भ्रष्टाचरणके लक्षण

१—नष्टवीर्य बालक सदा डरता है, अपनेसे बड़े लोगोंके सामने आँख उठाकर देख नहीं सकता। वह सदा किसी महान्

अपराधीकी भाँति शर्मिन्दा होकर नीचे देखता है अथवा मुख छिपाता फिरता है। सदा निरुत्साह रहता है। बहुतसे चालाक लड़के अपने दुर्गुणको छिपानेके लिए व्यर्थ ही छाती निकालकर ऐंठते हैं। वे जरूरतसे अधिक ढीठ बननेकी चेष्टा करते हैं, किन्तु मुख कान्तिहीन रहता है।

२—लड़केका आनन्दमय हँसमुख चेहरा सदा उदास और फीका रहता है। बदन सुस्त रहता है, फुर्तीका नाम निशान भी नहीं रह जाता। हर वक्त रोनेकीसी सूरत बनी रहती है। स्वभाव चिड़चिड़ा, क्रोधी और रूखा हो जाता है। मुख पीला पड़ जाता है और तेज जाता रहता है। गालोंकी स्वाभाविक गुलाबी छटा लोप हो जाती है और काले धब्बे पड़ने लगते हैं। किन्तु यह चिह्न १५-१६ वर्षकी अवस्थाके बाद दिखलायी पड़ता है।

३—आँखें भीतर धँस जाती हैं, गाल पचक जाते हैं। आँखोंके नीचे गढ़ा हो जाता है और काले धब्बे पड़ जाते हैं।

४—बाल पकने और झड़ने लगते हैं। स्पष्ट रीतिसे कोई रोग दिखलायी नहीं पड़ता, पर बदन सूखता जाता है। अंगप्रत्यंगमें शिथिलता छा जाती है; किसी अच्छे काममें दिल नहीं लगता। थोड़े परिश्रमसे ही थकावट आ जाती है, उत्साह नष्ट हो जाता है, खेलने-कूदनेमें भी दिल नहीं लगता। खूराक कम हो जाती है। हाजमा बिगड़ जाता है।

५—जरासा धमकाते ही छातीमें धड़कन पैदा हो जाती है। थोड़ा भी दुःख पहाड़सा प्रतीत होने लगता है।

६—बार-बार झूठी भूख लगती है, अपच और कब्ज होता है। चटपटी मसालेदार चीजें खानेकी इच्छा होती है। अच्छी तरह नींद नहीं आती। यदि आती भी है तो बड़ी गहरी नींद। सोकर उठते समय शरीरमें महा आलस्य भरा रहता है। आँखों-पर बोझसा लदा रहता है।

७—रातमें स्वप्नदोष होता है। वीर्य पतला पड़ जाता है, पेशावके साथ बूँद-बूँद करके वीर्य गिर जाता है; यह भी हस्तमैथुन तथा गुदामैथुनका मुख्य चिह्न है। बराबर पेशाव होता है, पुंसत्व नष्ट हो जाता है। शरीरमें मन्द मन्द पीड़ा होती है। अकारण ही शरीर ठंढा पड़ जाया करता है।

८—शृंगार-प्रधान नाटक, उपन्यास आदि पढ़ने, गन्दे चित्र देखने तथा विषय-सम्बन्धी बातें करनेकी विशेष इच्छा होती है। सदा कुसंगतिमें बैठनेकी प्रवृत्ति होती है, दुराचार अच्छा लगता है।

९—स्त्रियोंके साथ बातें करना, युवतियोंकी ओर ताकना पापी स्वभावका लक्षण है।

१०—मुखपर मुँहासे निकलना, उठते समय आँखोंके सामने अँधेरा छा जाना, मूर्छा आना, मस्तिष्क खाली हो जाना, अपने हाथकी रखी हुई वस्तुका स्मरण न रहना, बहुत जल्द भूल जाना, दुष्ट आचरणके लक्षण हैं।

११—चित्तका अत्यन्त चंचल, दुर्बल, कामी और पापी हो जाना, कोई काम करते-करते बीचहीमें छोड़ देना, क्षण-क्षणपर विचारोंका बदलते रहना, दिमागमें गर्मी छा जाना, आँखोंमें जलन

पैदा होना तथा पानी बहना, क्षणहीमें रुष्ट तथा क्षणहीमें प्रसन्न हो जाना, माथेमें, कमरमें, मेरुदंडमें, छातीमें बारम्बार दर्द पैदा होना, दाँतके मसूड़े फूलना, शरीरसे बदबू निकलना, वीर्य नाशके खास चिह्न हैं।

१२—तलवे और हथेलियोंका पसीजना, कँपकँपी आना, हाथपैरमें सनसनी आना भी इसी वीर्यनाशका कुफल है।

१३—मेरुदंडका झुक जाना, आवाजकी कोमलताका नष्ट हो जाना, शरीर बेडौल हो जाना, तथा पढ़ने-लिखनेमें उत्साह न रहना नष्टवीर्य बालकके लक्षण हैं। किसी-किसी भ्रष्ट लड़केकी आवाज कड़ी नहीं भी होती।

१४—ठीक अवस्थासे पहले ही युवावस्थाके चिह्न दिखायी पड़ने लगना भी वीर्य नाशका ही लक्षण है। किन्तु यह बात उन लड़कोंके सम्बन्धमें नहीं कही जा रही है, जो स्वस्थ हट्टे-कट्टे, फुर्तीले, सब कामोंमें तेज तथा बलवान होते हैं।

ऊपर लिखे लक्षण जिन बालकोंमें पाये जायँ, उन्हें समझ लेना चाहिये कि दुश्चरित्र हैं। ऐसे लड़कोंको इस ढंगकी शिक्षा मिलनेकी आवश्यकता होती है, जिससे उनका दुर्गुण दूर हो जाय और आचरणमें पवित्रता आ जाय। किन्तु सबसे आवश्यक और उत्तम तो यह हो कि पहलेहीसे बालकोंपर नजर रखी जाय, ताकि उनमें बुरी आदतें पड़ने ही न पावें। क्योंकि ये आदतें ऐसी हैं कि एकबार पड़ जानेपर इनका छूटना कठिन ही नहीं असम्भव हो जाता है।

माता-पिताकी लापरवाहीके कारण कितने ही अच्छे लड़के कुसंगमें पड़कर बिगड़ जाते हैं। फिर तो कुछ ही दिनोंमें वे नाना प्रकारके रोगोंमें ऐसे जकड़ उठते हैं कि लज्जावश घरवालोंसे चर्चा न करके छिपे-छिपे डाक्टरों और वैद्योंको ढूँढ़ने लगते हैं। इस प्रकार तरह-तरहकी अनर्गल औषधियोंके सेवनसे वे अपने स्वास्थ्य को और नष्ट कर डालते हैं। रोगके मूल कारणपर न तो उनका ध्यान जाता है और न डाक्टर या वैद्य ही चेत कराते हैं। अन्ततः परिणाम यह होता है कि बालकोंकी पूँजी जब खतम हो जाती है, तब वे अपने घरवालोंसे चोरी करने लगते हैं, रुपये, जेवर जो कुछ पाते हैं, लेकर हकीमके पास पहुँचते हैं और धीरे धीरे चोरी करनेके भी गहरे आदी हो जाते हैं। जब यह आदत घरके लोगोंको मालूम हो जाती है, तब वे लड़केपर अविश्वास करने लगते हैं, फटकारते हैं, इस तरह झगड़े और विरोधका अंकुर भी उत्पन्न होकर पुष्ट हो जाता है और सारा जीवन चिन्ता-ग्रस्त हो जाता है।

नवयुवकोंको इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि धातुपौष्टिक जितनी औषधियाँ होती हैं, वे सब कामोत्तेजक होती हैं। उनके सेवनसे शरीरमें यदि कुछ ताकत भी मालूम पड़े, तो वह केवल मनुष्यकी भावना तथा उस दवाके साथ दूध मलाई आदिके खानेका प्रभाव है, संसारमें ऐसा कोई भी वैद्य या डाक्टर नहीं है, जो दवाइयोंके जोरसे वीर्यहीनको वीर्यवान बनानेका सामर्थ्य रखता हो। यदि कोई इस तरहकी डींग मारे, तो धृष्टता है। एकमात्र मनकी शुद्धि ही मनुष्यको ब्रह्मचारी बनानेमें समर्थ है।

आजकल नवयुवकोंके दुराचरणी होनेके कारण हमारा देश रोगोंका घर हो गया है। कारण यह कि उनका स्वास्थ्य तो नष्ट हो ही जाता है, उनके वीर्य से उत्पन्न होनेवाली सन्तानें भी निर्बल और रुग्ण पैदा होती हैं। इससे देशमें डाक्टरों और वैद्योंकी भर-मार हो रही है। जिसे देखो, वही चिकित्सक बना बैठा है। जिसे जीवन-निर्वाहके लिए कोई भी धन्धा नहीं मिलता, वह चिकित्सक बन जाता है। अखबारोंमें झूठे विज्ञापन निकालकर ये लोग अपना पेट पालने लगते हैं। रोगियोंकी कमी है ही नहीं, बहुतसे अक्लके अन्धे और गाँठके पूरे इनके जालमें फँस जाते हैं। इसलिए लोगोंको चाहिये कि ऐसे स्वार्थान्धोंसे बचकर रहें।

माँ-बापके कर्त्तव्य

प्रत्येक माँ-बापका कर्त्तव्य है कि वे ऊपरके लक्षण दिखलायी पड़नेकी नौबत न आने दें। किन्तु यह तभी हो सकता है, जब बच्चोंपर पहलेहीसे ध्यान दिया जाय। बहुतसे लोग इस विषयमें अपने लड़के-लड़कियोंसे कुछ कहना-सुनना बहुत बुरा समझते हैं, पर यह बहुत बड़ी भूल है। हमारे कहनेका यह मतलब नहीं, कि निष्प्रयोजन ही उन्हें इस विषयकी शिक्षा देकर उनमें कुरुचि पैदा-कर दी जाय। क्योंकि ऐसी शिक्षासे तो लाभके बदले हानि ही अधिक होती है। जरूरत इस बातकी है कि उनपर नीचे लिखी बातोंके अनुसार नजर रखी जाय।

१—वे बुरे लड़कोंके साथ न खेलने पावें, और न उनसे मित्रता ही करने पावें। बिना कहे-सुने घरसे बाहर न निकलने पावें, यदि कहीं जायँ, तो कहकर जायँ। गन्दे गीत न गाने पावें और न सुनने ही पावें।

२—अश्लील पुस्तकें उनके सामने कभी न रखे। मुखसे कोई बुरी बात उनके सामने न कहे। चटपटी चीजें खानेको न दे।

३—स्त्रियोंमें बैठने तथा उनके साथ बातें करनेकी आदत न पड़ने दे। थोड़ी कसरत हमेशा करावे। नशीली चीजें खाने-को न दे।

इसी प्रकारकी और भी बहुतसी बातें हैं, जिनसे बालकोंकी आदतें बिगड़ जाती हैं, उनसे उन्हें दूर रखना चाहिये। आगे चलकर स्थल-स्थलपर वे सारी बातें बतला दी जायँगी। किन्तु जिन लड़कोंमें पीछे कहे गये लक्षण दिखलायी पड़ने लगें, उन्हें साफ और खुले शब्दोंमें वीर्यनाशके दुर्गुण बतलानेमें जरा भी संकोच नहीं करना चाहिये। इसमें लज्जा करना तथा अपमान समझना मानो अपनी सन्तानका सर्वनाश करना है। अतः उन्हें ब्रह्मचर्यके नियमोंका अवश्य ज्ञान करा देना चाहिये। बहुतसे लोग बच्चोंको किसी पराये मनुष्यके पास सुला देते हैं। वे इसके हानि-लाभपर विचार नहीं करते। उन्हें चाहिये कि ऐसा कभी न करें।

ब्रह्मचर्यसे आरोग्यता

किसी अनुभवी वैद्यने कहा है कि—एक वर्ष नियमित ब्रह्मचर्यका पालन करनेसे भयंकर रोग भी जड़से नष्ट हो जाता है। इस चिकित्सासे उन्होंने कई रोगियोंको अच्छा भी किया था। वे नाड़ी-द्वारा वीर्य-नाशक पुरुषको जान लेते थे और फिर उसे कोई दवा न देकर केवल ब्रह्मचर्यके नियमोंका पालन कराते थे। जो ऐसा नहीं करता था, उससे बातें ही नहीं करते थे।

कहावत है कि 'तन्दुरुस्ती लाख नियामत' आरोग्यतासे ही मनुष्य सब कुछ कर सकता है। आरोग्यता ही मनुष्यकी सबसे बड़ी सम्पत्ति है। यही अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंकी जड़ है। जिसने आरोग्य-लाभ नहीं किया, उसने कुछ भी नहीं किया और न वह कुछ कर ही सकता है। रोगी मनुष्य किसी कामका नहीं। वह सबके लिए भार-स्वरूप हो जाता है। रोगी मनुष्य संसार और परमार्थ दोनोंमें अयोग्य ठहरता है। उसके लिए भोग-विलासकी सारी चीजें दुखदायी बन जाती हैं। क्योंकि उनका उपभोग तो वह कर नहीं सकता, उलटा उन्हें देखकर मन-ही-मन भस्म होता रहता है। भोगी पुरुष सदा रोगी बना रहता है। वह कभी भी सुखी नहीं हो सकता। व्यभिचारी पुरुषको कदापि आरोग्यता प्राप्त नहीं होती। धनसे भी आरोग्यताका प्राप्त होना असम्भव है। आरोग्यता एक ऐसी वस्तु है, जो एकमात्र

वीर्य धारण करनेसे ही प्राप्त होती है। वीर्यवान पुरुषकी दासी बनकर रहनेमें ही यह प्रसन्न रहती है। वीर्यवान मनुष्य ही बलवान, आरोग्यवान, माननीय और अक्षय-कीर्तिधारी हुआ करते हैं।

संसारमें तीन बल हैं। एक शरीरबल, दूसरा ज्ञानबल और तीसरा मनोबल। इन तीनोंमें मनोबल सबसे ऊँचा है। इस बलके बिना सब बल व्यर्थ हो जाते हैं। किन्तु यह मनोबल बिना शरीर-बलके प्राप्त नहीं होता। शरीरबल ही हमारे सब बलोंका मूल कारण है। यह शरीर-बल आरोग्यता है। इसलिए हमें चाहिए कि शरीर-बल प्राप्त करनेके लिए वीर्य-रक्षा-द्वारा आरोग्यता प्राप्त करें। इसके बिना सब व्यर्थ है।

आरोग्यताका सर्वोत्तम साधन ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचारी पुरुष ही आरोग्य हो सकता है। आज हमें भारतके उत्थानके लिए आत्म-बलकी मुख्य आवश्यकता है। किन्तु हम पहले ही कह आये हैं कि आत्मबलकी जड़ है शरीरबल यानी आरोग्यता। इसलिए शरीर-बलके न होनेपर हम संसार-संग्राममें विजय प्राप्त नहीं कर सकेंगे। दुर्बलताके कारण हम सदा काम-क्रोधादिके दास बने रहेंगे। और फिर शरीर-बलकी तो पग-पगपर आवश्यकता है। यदि हमारे शरीरमें बल न हो तो हम उठकर मल-मूत्रका त्याग भी नहीं कर सकते। यदि बल न हो, तो हम खायी हुई वस्तुको पचा भी नहीं सकते, यदि हाथोंमें बल न हो तो हम थालीसे ग्रास उठाकर मुखमें डाल भी नहीं सकते। कहाँतक कहा जाय-शरीर-

बलके बिना संसारका छोटा-से-छोटा और अत्यन्त प्रयोजनीय काम भी हम नहीं कर सकते। अतः शरीर-बल प्राप्त करना सबसे प्रथम ध्येय होना चाहिये। क्योंकि शरीर-बल ही सब ध्येयोंका मुख्य आधार है। बिना शरीर-सुधारके हम किसी अवस्थामें सुखी और स्वतंत्र नहीं हो सकते और न किसी काममें सिद्धि ही प्राप्त कर सकते हैं।

किन्तु हमारा केवल यही एक शरीर नहीं है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण-भेदसे तीन प्रकारके शरीर होते हैं। इस शरीर रूपी राज्यमें अगणित शरीर-धारी कीटाणु सेनाके रूपमें रात-दिन हमारी रक्षा करते हैं। इन सबका राजा आत्मा है। विजय उसी राजाकी होती है, जिसकी सेना बलवान और प्रचंड है। ठीक यही हाल हमारे शरीर रूपी राज्यपर विजय प्राप्त करनेके लिए या इसका नाश करनेके लिए असंख्य कीटाणुओंकी सेना वायु-मंडलमें फिरा करती है जो इन्हें निबल पाते ही शरीरमें घुस जाती है। इसलिए शरीरकी रक्षाके लिए अपने भीतर रहनेवाले और रक्षा करनेवाले कीटाणुओंको बलवान रखना बड़ा ही आवश्यक है। पर ये बलवान तभी रह सकते हैं, जब पूर्ण रीतिसे वीर्यकी रक्षा की जाती है तथा ब्रह्मचर्यके नियमोंका पालन किया जाता है।

जिस मनुष्यमें शरीरबल नहीं होता, उसे पग-पगपर अपमानित भी होना पड़ता है। इसलिए ब्रह्मचर्यका पालन करना नितान्त प्रयोजनीय है। इसपर एक ऐतिहासिक कथा बड़ी ही उत्साहित करनेवाली है। वह यह कि बलवीर्यके प्रतापसे ही बड़े

बड़े योद्धाओंके रहते हुए पितामह भीष्म, काशीराजकी अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका नामकी तीन कन्याओंको जीत लाये। अम्बिका और अम्बालिकाका विवाह तो अपने दोनों छोटे भाई चित्रांगद और विचित्रवीर्यके साथ कर दिया, पर ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करनेके कारण उन्होंने अम्बाको लौट जानेकी आज्ञा दी। इसपर अम्बाको बड़ा ही दुःख हुआ। वह दुखी होकर परशुराम-जीकी शरणमें गयी और अपनी सारी कष्ट-कथा सुनाकर उनके हृदयमें करुण-भाव उत्पन्न कर दिया। परशुरामने कहा कि हम तुम्हारे लिए भीष्मसे कहेंगे और यदि वह न मानेंगे, तो उनके साथ युद्ध करेंगे। यदि वे परास्त हो गये, तो उनके साथ तुम्हारा विवाह करा दिया जायगा।

इस प्रकार वे अम्बाको लेकर पितामह भीष्मके पास आये और कहा,—तुम इस कन्याके साथ विवाह करलो। परशुरामजीकी इस बातको, भीष्मजीने अस्वीकार कर दिया। भीष्मने कहा कि, यदि युद्धमें आप मुझे हरा देंगे, तो मैं इस कन्याके साथ अवश्य विवाह कर लूँगा। दोनोंमें घोर युद्ध शुरू हो गया। भीष्मके हृद-यमें ब्रह्मचर्यकी शक्ति भरी हुई थी। उन्होंने उसीका स्मरण किया। उन्हें विश्वास हो गया कि मेरा पक्ष न्याय का है, विजय मेरी ही होगी। अन्ततः वही हुआ भी। परशुरामजी हारकर चले गये, ब्रह्मचारी भीष्मने ब्रह्मचर्य-द्वारा प्राप्त शरीर-बलकी प्रतिभासे सारे संसारको चकित करते हुए अपने मान-गौरव तथा प्रतिज्ञाकी पूर्ण रीतिसे रक्षा की। सोचनेकी बात है कि यदि भीष्ममें शरीर

बल न होता तो क्या वे अपनी की हुई प्रतिज्ञाका निर्वाह कर सकते ? कदापि नहीं। तब तो महापराक्रमी परशुरामजी आनन-फानन विजय प्राप्त करके भीष्मके गौरवको धूलमें मिला देते। आज इतिहासमें पितामह भीष्मका इतना ऊँचा स्थान कभी भी न रह गया होता।

ब्रह्मचर्यसे आयु-वृद्धि

यह बिलकुल प्रचलित नियम है कि कुमारावस्था जितनी आयुतक रहती है, उससे पाँच गुनी या छः गुनी उस मनुष्यकी आयु होती है। कुमारावस्थाका अभिप्राय यह है कि युवावस्थाके काम-विकारका अभाव। यौवनावस्थाके कामविकारका प्रादुर्भाव जिस समय होता है, उससे पहले जो आयु बीत चुकी रहती है, उसीको कुमारावस्था कहते हैं। साधारणतया नियमित रूपसे रहने-वाले मनुष्यमें बीस वर्षकी अवस्थामें तारुण्य-भाव आता है, इसलिए मनुष्यकी आयु १०० से लेकर १२० वर्ष तककी मानी गयी है। किन्तु दुःख है कि आजकल बाल्यावस्था और कुमारा-वस्था का समय बहुत ही कम रह गया है; यही कारण है कि हमारी आयु भी घट गयी है। समाज और जातिमें ब्रह्मचर्यका घात करनेवाले तथा असमयमें ही तारुण्य लानेवाले विचार और कार्य होनेके कारण ही हमारा इस प्रकार ह्रास हुआ है और होता जा रहा है। यदि फिर ओजस्वी विचारोंका प्रचार हो जाय, तो

अवश्य ही हमारी तथा हमारे बच्चोंकी आयु बढ़ सकती है। हमारे पूर्वज महर्षियोंने यौगिक नियमोंका प्रचार करके यही सोचा था कि यह अवस्था केवल २० वर्ष ही न रहे बल्कि इससे भी अधिक बढ़े। किन्तु समयके फेरसे आज ठीक उसका उल्टा हो रहा है। यौगिक नियमोंके स्थानपर दूसरे बुरे व्यवहार ही प्रचलित हो गये हैं। अतएव देशके नेताओंका कर्त्तव्य है कि वे देशवासियोंको योगके नियमोंपर चलानेका प्रयत्न करें। प्रत्येक मनुष्यको उचित है कि वह बाल्यकालकी अवधि बढ़ानेमें प्रयत्नशील हो। किन्तु यह तभी सम्भव है, जब ब्रह्मचर्यका उचित रीतिसे पालन किया जायगा। बिना ब्रह्मचर्यका पालन किये किसी भी सुख या ऐश्वर्यकी आशा करना निरी मूर्खता है।

इस बातका हमेशा ध्यान रखना चाहिये कि एकबारके वीर्य-पातसे साधारणतः दस दिनकी आयु घटती है। इस प्रकार लगातार सालभरतक प्रतिदिन वीर्य-पात करते रहनेसे कम-से-कम दस वर्षकी आयु कम हो जाती है।

तीसरा प्रकरण

ब्रह्मचर्यकी विधियाँ

गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने कहा है कि, जिस मनुष्यकी जैसी भावना रहती है, वह उसी प्रकारका हो जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि परमात्मा कल्पवृक्ष है। जिस प्रकार कल्पवृक्षके नीचे बैठकर मनुष्य जिस वस्तुकी चिन्ता करता है, वह तुरन्त ही सामने आ जाती है, उसी प्रकार परमात्माकी सृष्टिमें मनुष्य अपनी भावनाके अनुकूल ही हो जाता है। इसलिए मनुष्यको सदा अच्छी भावना करनी चाहिये। कहनेका अभिप्राय यह कि मनुष्य अपने ही विचारोंसे श्रेष्ठ और नष्ट होता है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। यह कहना मूर्खता है कि अमुक आदमीको अमुक व्यक्तिने चौपट कर दिया। कोई किसीको बना या बिगाड़ नहीं सकता। हम मानते हैं कि सत्संग और कुसंगसे मनुष्यका बनाव और बिगाड़ होता है, किन्तु उसमें भी मनुष्यके विचारोंकी ही प्रधानता है। यदि उसके विचार अच्छे होंगे तो वह कुसंगमें पड़ेगा ही क्यों? और यदि उसके विचार बुरे होंगे

तो वह सत्संगमें कदापि न जायगा। इसलिए मनुष्यको बनाने-बिगाड़नेवाला दूसरा कोई नहीं है, वह अपने ही कर्मोंसे बनता-बिगड़ता है। गीताकारने कहा भी है:—

"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः।"

मन ही मनुष्यको दास बनाता है, मन ही उसे डरपोक बनाता है और मन ही मनुष्यको स्वर्ग या नरकमें ले जाता है। स्वर्ग या नरक रूपी गृहकी कुञ्जी परमात्माने हमें ही दे रक्खी है। मनुष्यकी सुगति और दुर्गति उसके भले-बुरे संकल्पों तथा विचारोंपर ही निर्भर है। पापी विचारोंसे वह पापात्मा तथा पुण्यमय विचारोंसे वह अवश्यमेव पुण्यात्मा बन जाता है। पतित-से-पतित मनुष्य भी यदि उच्च और पवित्र विचारका हो जाय तो वह भी उच्च और पवित्रात्मा बन सकता है। किन्तु भगवान् कहते हैं कि उसकी बुद्धिका निश्चय पूरा होना चाहिये। क्योंकि बिना दृढ़ विश्वासके कुछ नहीं होता; "विश्वासो फलदायकः।" विश्वास जितना ही अधिक होगा, उतना ही उसका फल भी अधिक होता है। इस विश्वासका सम्बन्ध मनसे है। इसीसे इसमें मनोयोगी होनेकी जरूरत है। किसी बातमें संशय करना ठीक नहीं। "संशयात्मा विनश्यति" यानी संशय करनेवाला मनुष्य नाशको प्राप्त होता है।

सच पूछिए तो बुरी कल्पनाओंसे ही मनुष्यका सर्वनाश होता है। अतः ब्रह्मचारीको चाहिये कि वह हठ-पूर्वक कुबुद्धिको तथा बुरे विचारोंको त्यागकर सुबुद्धि और सुविचारोंको दृढ़

विश्वासके साथ धारण करे। और यह निश्चय कर ले कि इसीसे हमारा उद्धार होगा—इसे मैं मरते दम तक कभी न छोड़ूँगा। किन्तु इसके लिए किसी समय-विशेष या शुभलग्नकी प्रतीक्षा करनेकी आवश्यकता नहीं। यह तो संयम् शुभ रूप है। शुरू करनेमें आगा-पीछा करनेवाला धोखा खाता है। जितने जल्द इस कार्यमें प्रवृत्त हो सको, उतना ही अच्छा। याद रहे कि मनुष्य जिस दिन जन्मता है, उसी दिन उसका अँगूठा कालरूपी सर्पके मुखमें पड़ जाता है। ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते हैं त्यों-त्यों मनुष्य-शरीरका अधिक भाग कालके मुखमें घुसता जाता है और एक दिन समूचा शरीर ही लोप हो जाता है। इसलिए कब हमारा यह नश्वर शरीर न रहेगा, इसका कोई ठीक नहीं है। ऐसी दशामें यदि हम किसी कामको कलपर टाल दें, और आज ही हमारा शरीर नष्ट हो जाय, तो कलपर टालना किस काम आवेगा ? किन्तु यदि आजहीसे उसे शुरू कर दें और शुरू करते ही हमारा शरीर नष्ट हो जाय, तो अन्तिम विचारानुसार हमारा जन्म हो जायगा और सारा काम बन जायगा। क्योंकि यह नियम है, कि मृत्युकालमें जैसा विचार रहता है, वैसा ही मनुष्यका जन्म भी होता है। पर इससे कोई यह न समझ बैठे कि पीछेके कर्म नष्ट हो जाते हैं। ऐसा कदापि नहीं होता। हाँ, यह अवश्य होता है कि अन्तिम भावनाकी अगले जन्ममें प्रधानता रहती है और पिछले कर्म गौण रहकर भोगमें समाप्त हो जाते हैं।

अतः ब्रह्मचारीको प्रतिदिन सोनेसे पहले आधा घण्टा या

पाव घण्टा स्थिर-चित्त होकर पवित्र संकल्प करना चाहिये। इससे सारे कुसंस्कारोंका नाश हो जाता है, और एक अद्भुत दैवी शक्ति प्रकट होती है। किन्तु इसमें घबड़ानेकी जरूरत नहीं। एक दिनमें यह काम होनेवाला नहीं है। इसको बराबर विश्वास-पूर्वक करते जाना चाहिये। यह नहीं कि चार दिन किया और कुछ प्रकट रूपसे न मालूम होनेपर छोड़कर फिर नरकके कीड़े बननेके लिए निमग्न हो गये। आज बीज बोकर कल ही फलकी आशा करना उचित नहीं है। ऐसे अधीर और जल्दबाज लोगोंको कदापि यश नहीं मिलता और न उनकी उन्नति ही हो सकती है। यदि शीघ्र फल न मिले, तो समझो कि पहलेके पाप-संकल्प अधिक हैं; पर वे पुण्य संकल्पोंद्वारा अवश्य ही परास्त हो जायँगे। जबतक हृदयके अपवित्र भाव पराजित न हो जायँ, तबतक हठ-पूर्वक तेजीके साथ चेष्टा करते जाओ। परिश्रमका फल व्यर्थ नहीं जाता।

यह याद रहे कि प्रतिध्वनि हमेशा ध्वनिके अनुकूल ही हुआ करती है। किसी ऊँचे मन्दिरमें तुम जैसा बोलोगे, वैसी ही प्रतिध्वनि भी होगी। ठीक यही बात पूजन-अर्चनके सम्बन्धमें भी है। यदि हम बराबर कहा करें कि, हे भगवन्! हम बड़े ही वीर्यवान् हों, तो समूचा देश हमें वीर्यवान् कहने लगेगा और हम अनायास ही वीर्यवान् हो जायँगे। अतः जिस प्रकारका हम अपनेको बनाना चाहें, उसी प्रकारकी हमें निःशंक भावसे प्रतिदिन स्तुति-प्रार्थना करनी चाहिये।

"तुलसी अपने रामको, रीझ भजे या खीझ।
खेत परेपर जामिहै, उलटा पुलटा बीज॥"

ठीक यही दशा हमारे कर्मोंके फलकी है। मामूली बीज तो किसी कारणसे नहीं भी उगते, पर कर्म-बीज एक भी उगे बिना नहीं रहता, सभी फल रूप होते हैं, यह निश्चय है। गोस्वामी तुलसीदासजीने लिखा है:—

"तुलसी काया खेत है, मनसा भयउ किसान।
पाप, पुन्य दोउ बीज हैं, बुवै सो लुनै निदान॥"

अतः प्राप्त फलोंके भोगमें दुखी होना, कमजोरी और व्यर्थ है। क्योंकि जो कुछ किया है, उसका फल तो भोगना ही पड़ेगा। चाहे मनुष्य कायर और दुखी होकर उसे सहे अथवा वीर और धीर होकर तथा उसमें सुख मानकर। हर हालतमें सहना अवश्य पड़ेगा। बिना सहे और भोगे छुटकारा नहीं होनेका। हाँ, बुद्धिमानी तो तब कही जा सकती है, जब मनुष्य आगेके लिए सावधान हो जाय, यानी ऐसा कर्मबीज न बोवे जिसका कड़वा फल उसे चखना पड़े।

किन्तु ऐसा करनेके लिए प्रातःकाल उठते ही अत्यन्त प्रेमसे चार-छः उत्तम भजनोंका पाठ करना चाहिये। ब्रह्मचारियोंकी सुविधाके लिए हम कुछ पद नीचे उद्धृत कर देते हैं:—

(१)

हौं हरि पतित-पावन सुने ।
हौं पतित तुम पतित-पावन दोउ बानक बने ॥१॥
व्याध गनिका गज अजामिल स्वगति निगमनि भने ।
और अधम अनेक तारे जात कापै गने ॥२॥
जानि नाम अजानि लीन्हें नरक जमपुर मने ।
दासतुलसी सरन आयो राखिये अपने ॥ ३ ॥

—विनय-पत्रिका ।

(२)

मन पछितैहै अवसर बीते ।
दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु, करम, वचन अरु हीते ॥१॥
सहसबाहु दसवदन आदि नृप, बचे न काल बलीते ।
हम हम करि धन-धाम सँवारे, अन्त चले उठि रीते ॥२॥
सुत वनितादि जानि स्वारथ-रत, न करु नेह सबहीते ।
अन्तहु तोहि तजैंगे, पामर ! तू न तजै अवहीते ॥ ३ ॥
अब नाथहिं अनुराग जागु जड़, त्यागु दुरासा जीते ।
बुझै न काम अगिनि तुलसी कहुँ, विषयभोग बहु घीते ॥४॥

—विनय-पत्रिका ।

(३)

सेइ चरन सरोज सीतल, तजि विषै रस-पान ॥१॥
जानु जंघ त्रिभंग सुन्दर, कलित कंचन दंड ।

काछिनी कटि पीत पट दुति, कमल केसर खंड ॥२॥
मनु मराल प्रवाल छौना, किंकिनी कल राव ।
नाभि हृद रोमावली अलि, चले सैन सुभाव ॥३॥
कण्ठ मुक्ता माल मलयज, उर बनी बनमाल ।
सुरसुरीके तीर मानो, लता स्याम तमाल ॥४॥
बाहु पानि सरोज पल्लव, गहे मुख मृदु बेनु ।
अति विराजत वदन विधुपर, सुरभि रञ्जित बेनु ॥५॥
अरुन अधर कपोल नासा, परम सुन्दर नैन ।
चलित कुण्डल गण्डमण्डल, मनहु नितरत मैन ॥६॥
कुटिल कच भ्रू तिलक रेखा, सीस सिखि श्रीखण्ड ।
मनु मदन धनु सर संधाने, देखि घन को दण्ड ॥७॥
सूर श्रीगोपालकी छवि, दृष्टि भरि भरि लेत ।
प्रानपतिकी निरखि सोभा, पलक परिनि न देत ॥८॥

—सूरसागर ।

महात्मा सूरदासजी-रचित ऊपरका नख-शिख वर्णन सम्बन्धी, पद ध्यानके लिए बड़ा उत्तम है ।

(४)

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी ।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंजहारी ॥ १ ॥
नाथ तू अनाथको, अनाथ कौन मोसो ?
मो समान आरत नहिं, आर्तिहर तोसो ॥ २ ॥

ब्रह्म तू हौं जीव, तू ठाकु हौं चेरो।
तात, मात, सखा, गुरु तू सब विधि हितु मेरो॥ ३॥
तोहिं मोहिं नाते अनेक, मानियै जो भावै।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु, चरन सरन पावै॥ ४॥

—विनय-पत्रिका।

(५)

जिय जबतें हरिते बिलगान्यो। तबतें देह-गेह निज जान्यो॥
मायाबस स्वरूप बिसरायो। तेहि भ्रमते दारुन दुख पायो॥
पायो जो दारुन दुसह दुख सुख लेस सपनेहु नहिं मिल्यो।
भवसूल सोग अनेक जेहि तेहि पन्थ तू हठि हठि चल्यो॥
बहु जोनि जनम जरा बिपति मतिमन्द हरि जान्यो नहीं।
श्रीराम बिनु बिश्राम मूढ़ विचार लखि पायो नहीं॥१॥
आनँद सिन्धु मध्य तव बासा। बिनु जाने कस मरसि पियासा॥
मृग-भ्रम-बारि सत्य जिय जानी। तहँ तू मगन भयो सुख मानी॥
तहँ मगन मज्जसि पान करि त्रयकाल जल नाहीं जहाँ।
निज सहज अनुभव रूप तव खल भूलि अब आयो तहाँ॥
निरमल निरञ्जन निरबिकार उदार सुख तैं परिहर्‌यो।
निहकाज राज बिहाइ नृप इव सपन कारागृह पर्‌यो॥२॥
तैं निज कर्म-डोरि दृढ़ कीन्हीं। अपने करन गाँठि गहि दीन्ही॥
तातें परबस पर्‌यो अभागे। ता फल गरभ-बास-दुख आगे॥

आगे अनेक समूह संसृति उदर गत जान्यो सोऊ।
सिर हेठ, ऊपर चरन सङ्कट बात नहिं पूछै कोऊ॥
सोनित पुरीष जो मूत्र-मल कृमि कर्दमावृत सोवई।
कोमल शरीर गँभीर वेदन, सीस धुनि धुनि रोवई॥३॥

तू निज करम-जाल जहँ घेरो। श्रीहरि सङ्ग तज्यो नहिं तेरो॥
बहु बिधि प्रतिपालन प्रभु कीन्हों। परम कृपालु ज्ञान तोहिं दीन्हों॥

तोहिं दियो ज्ञान विवेक जनम अनेककी तब सुधि भई।
तेहि इसकी हौं सरन जाकी विषम माया गुन मई॥
जेहि किये जीव-निकाय बस रसहीन दिन दिन अति नई।
सो करौ वेगि सँभार श्रीपति विपति महँ जेहि मति दई॥४॥

पुनि बहु विधि गलानि जिय मानी। अब जग जाइ भजौं चक्रपानी॥
ऐसेहु करि विचार चुप साधी। प्रसव-पवन प्रेरेउ अपराधी॥

प्रेरेउ जो परम प्रचण्ड मारुत कष्ट नाना तैं सह्यो।
सो ग्यान ध्यान विराग अनुभव जातना पावक दह्यो॥
अति खेद व्याकुल अल्प बल छिन एक बोलि न आवई।
तब शीघ्र कष्ट न जान कोउ सबलोग हरषित गावई॥५॥

बाल दसा जेते दुख पाये। अति असीम नहिं जाहिं गनाये॥
छुधा व्याधि बाधा भइ भारी। वेदन नहिं जानै महतारी॥

जननी न जानै पीर सो, केहि हेतु सिसु रोदन करै।
सोइ करै विविध उपाय जातें अधिक तुव छाती जरै॥

कौमार सैसव अरु किसोर अपार अघ को कहि सकै ।
वितरेक तोहि निरदय महाखल आन कहु को कहि सकै ॥६॥

जौवन जुवती सँग रँगरात्यो । तब तू महा मोद मदमात्यो ॥
ताते तजी धरम मरजादा । बिसरे तब सब प्रथम विषादा ॥

बिसरे विषाद निकाय संकट समुझि नहिं काटत हियो ।
फिरि गर्भ-गत-आवर्त संसृति चक्र जेहिं होइ सोइ कियो ॥
कृमि भस्म-विट-परिनाम तनु तेहि लागि जग वैरी भयो ।
परदार-परधन-द्रोह पर संसार बाढ़ै नित नयो ॥७॥

देखत ही आयी विरुधाई । जो तैं सपनेहुँ नाहिं बुलाई ॥
ताके गुन कछु कहे न जाहीं । सो अब प्रगट देखु मन माहीं ॥

सो प्रगट तनु जरजर जरावस व्याधि सूल सतावई ।
सिर कम्प इन्द्रिय-सक्ति प्रतिहत वचन काहु न भावई ॥
गृहपालहू तें अतिनिरादर खान-पान न पावई ।
ऐसिहु दसा न विराग तहँ तृस्ना तरङ्ग बढ़ावई ॥

कहि को सकै महाभव तेरे । जन्म एकके कछुक गनेरे ॥
खानि चारि सन्तत अवगाहीं । अजहुँ न करु विचार मन माहीं ॥

अजहूँ विचार विकार तजि भजु रामजन सुखदायकं ।
भवसिन्धु दुस्तर जलरथं भजु चक्रधर सुरनायकं ॥
बिनु हेतु करुनाकर उदार अपार माया-तारनं ।
कैवल्य-पति जगपति रमापति प्रानपति गति कारनं ॥८॥

रघुपति भक्ति सुलभ सुखकारी। सो त्रयताप-सोक-भयहारी ॥
बिनु सतसंग भक्ति नहिं होई। ते तब मिलै द्रवै जब सोई ॥
जब द्रवै दीनदयालु राघव साधु संगति पाइये।
जेहि दरस परस समागमादिक पापरासि नसाइये ॥
जिनके मिले दुख-सुख-समान अमानतादिक गुन भये।
मद-मोह-लोभ-विषाद-क्रोध सुबोधतें सहजहिं गये ॥१०॥
सेवत साधु द्वैत भय भागै। श्रीरघुवीर चरन लौ लागै ॥
देह जनित विकार सब त्यागै। तब फिरि निज स्वरूप अनुरागै ॥
अनुरागसो निज रूप जो जगतें विलच्छन देखिये।
सन्तोस-सम सीतल सदा दम देहवंत न लेखिये ॥
निरमल निरामय एकरस तेहि हर्ष-सोक न व्यापई।
त्रैलोक-पावन सो सदा जाकी दसा ऐसी भई ॥११॥
जो तेहि पंथ चलै मन लाई। तौ हरि काहे न होहिं सहाई ॥
जो मारग स्रुति साधु दिखावै। तेहि पथ चलत सबै सुख पावै ॥
पावै सदा सुख हरि कृपा संसार-आसा तजि रहै।
सपनेहुँ नहीं दुख द्वैत दरसन बात कोटिक को कहै ॥
द्विज देव गुरु हरि सन्त बिनु संसार-पार न पाइये।
यह जानि तुलसीदास त्रासहरन रमापति गाइये ॥१२॥

—विनय-पत्रिका।

इस प्रकारके उत्तमोत्तम भक्तिपूर्ण पदोंका पाठ करके शुभ संकल्प किया करो। देखोगे कि संकल्प ही करते-करते तुममें दैवी

तेज प्रवेश कर जायगा। किन्तु बिना संकल्प किये कोई भी काम प्रारम्भ नहीं करना चाहिये। लिखा है:—

संकल्पयेन बिना राजन् यत्किंचित्कुरुते नरः।
फलस्याल्पाल्पकं तस्य धर्मस्यार्धक्षयो भवेत् ॥

—पद्म-पुराण।

अर्थात् राजन्! संकल्पके बिना मनुष्य जो कुछ करता है, उसका फल बहुत ही कम होता है और उसके धर्मका आधा भाग नष्ट हो जाता है। इसीसे आर्य-धर्ममें प्रत्येक शुभकर्मके प्रारम्भमें संकल्प करनेकी विधि है। क्योंकि जो काम संकल्प के बिना किया जाता है, वह बहुधा पूर्ण नहीं होता। कारण यह कि ऐसे कामोंमें मनुष्य ढिलाई कर जाता है और करते-करते बीच ही में छोड़ भी देता है। इसलिए ब्रह्मचर्य धारण करनेके लिए भी दृढ़ होकर इस प्रकार संकल्प करना बहुत ही आवश्यक है:—

हे प्रभो! आजसे मैं वीर्य-रक्षा करनेमें दत्तचित्त रहूँगा। व्यभिचारसे सदा घृणा करूँगा। मैं परायी स्त्रीको बुरी दृष्टिसे न देखूँगा। किसीका अहित न करूँगा। सदा प्रसन्नचित्त रहूँगा और प्रिय वचन बोलूँगा। सत्यका पालन करूँगा। मैं धर्मको छोड़कर और किसीसे न डरूँगा। ऐ परब्रह्म परमात्मन्! एकमात्र तू ही मेरा सहायक है।

बाद नीचे लिखी बातोंका चिन्तन करते रहना चाहिये—

१—ईश्वर सर्वत्र है; मुझमें और ईश्वरमें भेद नहीं है। समूचा जगत् ब्रह्ममय है। "अहंब्रह्मास्मि" यही मेरा स्वरूप है।

२—ईश्वर सत् स्वरूप, चित् स्वरूप और आनन्द स्वरूप है, इसीसे उसका नाम 'सच्चिदानन्द' है। वह निःसंग, अविनाशी और निष्कलंक है। वह सदा एकरस रहनेवाला है।

३—ईश्वर वीर्यवान्, सर्वशक्तिमान् और सीमारहित है। मेरा स्वरूप भी वही है। मायाके आवरणसे अबतक मैं अपनेको भूला हुआ था। किन्तु अब उसका पर्दा अपने-आपही हटता जा रहा है।

४—मैं जो चाहूँ सो कर सकता हूँ, मेरी अबाध गतिको कोई भी नहीं रोक सकता।

५—अब मैं अपने वीर्यको किसी प्रकार भी न गिरने दूँगा। स्वप्नमें भी मेरा वीर्य नहीं गिरने पावेगा। मैं वीर्यकी रक्षाके लिए अपने मनमें किसी प्रकारकी भी बुरी भावना उत्पन्न ही न होने दूँगा।

६—अब क्रमशः मेरी वृत्तियां पवित्र होती जा रही हैं। मैं अब ब्रह्मचर्यका पालन कर रहा हूँ, अब मेरे उद्धारमें रंचभर भी सन्देह नहीं है।

७—हे नाथ! मैं तुम्हारा हूँ और तुम मेरे हो।

"अब करुनाकर कीजिये सोई। जेहि आचरन मोर हित होई॥"

रहन-सहन

ब्रह्मचारीको अपने प्रत्येक काम और विचारमें पूरी सावधानी रखनी चाहिये। हर कामका नियमबद्ध होना ब्रह्मचारीके लिए

बहुत जरूरी है। यदि कोई काम करना हो तो पहले सोच लेना चाहिये कि इस कामका प्रभाव ब्रह्मचर्य पर क्या पड़ेगा। यदि बुरा प्रभाव पड़नेकी सम्भावना हो तो उस कामको स्थगित कर देना उचित है। यदि कोई विचार मनमें उत्पन्न हो तो सोचना चाहिये कि इससे मनपर बुरा असर तो नहीं पड़ेगा। ऐसे विचारों-को कभी भी मनमें न लाना चाहिये, जिनसे मन दूषित हो। हर समय इन बातोंका ध्यान रखना ब्रह्मचर्यके लिए अत्यन्त आवश्यक है। यहाँ तक कि कोई शब्द मुखसे निकालनेके पहले ब्रह्मचारीको उसका हानि-लाभ सोच लेना उचित है।

जिस कामसे या वचनसे अथवा विचारसे किसीका अथवा अपना अहित हो, उसे त्यागे रहनेमें ही कल्याण है। बहुत काम ऐसे होते हैं, जो बिना उद्देश्यके ही मनुष्यसे हो जाते हैं। किन्तु ब्रह्मचारीको ऐसा काम करके अपनी शक्तिका दुरुपयोग कदापि न करना चाहिये; उसका प्रत्येक काम सार्थक होना जरूरी है, निरर्थक नहीं।

सोना और जागना भी ब्रह्मचारीका नियमित समय पर होना उचित है। जो ब्रह्मचारी बनना चाहें, तथा आरोग्य रहकर सुखी रहना चाहें, उन्हें जल्दी सोने और जागनेका अभ्यास अवश्य करना चाहिये। रातके दस बजे तक सो जाना चाहिये। और भोरमें चार बजे तक उठ जाना चाहिये। क्योंकि सवेरे उठनेसे बहुत लाभ होता है, यह आगे चलकर बतलाया जायगा। इसी प्रकार भोजनमें सदा विचार रखना चाहिये, उठने-बैठनेमें भी

भले-बुरेका ज्ञान रखना चाहिये, संगति पर ध्यान रखना चाहिये, अपनी उन्नति और अवनतिका सदा ध्यान रखना चाहिये आदि।

सवेरे उठनेके लाभ

सवेरे उठनेसे बुद्धि स्वच्छ रहती है, आलस्य दूर होता है, मानसमें उत्तम विचार होते हैं। स्वप्नदोष भी प्रायः रातके अन्तिम पहरमें ही हुआ करता है। सवेरे उठनेसे स्वप्नदोषका होना बन्द हो जाता है। जो आदमी सवेरेका अमूल्य समय नष्ट कर देता है, उसका समूचा दिन ही व्यर्थ चला जाता है। जिस प्रकार मनुष्य-जीवनकी बाल्यावस्था जड़ है, उसी प्रकार दिनकी यह बाल्यावस्था है और मूल है। प्राचीन समयके लोग सवेरे उठनेके पूरे अभ्यासी होते थे। क्योंकि इस समयकी वायु अत्यन्त शुद्ध और लाभदायक होती है। मानसिक शक्तिको बढ़ाने के लिए प्रातःकालका उठना अत्यन्त प्रयोजनीय है। जो लोग इस समय सोते रहते हैं, वे अल्पायु, आलसी, दरिद्र, हठी और बुरे विचारवाले हो जाते हैं।

हमारे शास्त्रकारोंने प्रातःकालके समयको 'अमृत-बेला' कहा है। रात-भरके विश्रामके कारण इस समय मनुष्यकी बुद्धि स्वाभाविक ही शान्त, गम्भीर और पवित्र रहती है। ऋषिलोग इस समय उठकर सबसे पहले स्थिर-चित्तसे परमात्माका ध्यान करते थे. यही कारण है कि इतने दिन बीत जानेपर भी अभीतक समूचे संसारमें उनकी कीर्त्ति और यशका गुण गाया जा रहा है। इस-

लिए ब्रह्मचारीको उचित है कि वह काम-क्रोधादि शत्रुओंको परास्त करनेके लिए इस अमूल्य समयको सोनेमें न बितावे। कहावत है, 'जो सोया सो खोया।' इस समय उठकर परमात्माका ध्यान करना चाहिये और शान्ति-लाभ करना चाहिये। सवेरे उठनेका अभ्यास डालनेसे इसके गुणोंका पता अपने-आप ही चल जाता है।

शुद्ध वायु और शयन-विधि

जहाँ तक हो सके, खुली हवामें सोना और रहना चाहिये। क्योंकि वायुमें बहुत बड़ी संजीवनी शक्ति है। इसके बिना कोई भी जीव नहीं जी सकता। बिना आहारके मनुष्य दो-चार दिन रह सकता है, जलके बिना भी कुछ समय तक शरीर रह सकता है, किन्तु हवाके बिना तो मनुष्य दो-चार मिनटमें ही मर जाता है। सोचिये, साँस बन्द करके मनुष्य कितनी देर तक जी सकता है? इसलिए जो हवा जीवनके लिए, इतनी उपयोगी है, उसका शुद्ध होना बड़ा जरूरी है। जहाँ शुद्ध हवासे मनुष्यका बहुत बड़ा लाभ होता है, वहाँ गन्दी और विकारयुक्त हवासे उसकी मृत्यु भी हो जाती है। नीचे लिखी बातोंपर पूर्ण रीतिसे ध्यान देना ब्रह्मचारीका परम कर्त्तव्य है:—

१—सोनेका कमरा हवादार और प्रकाश-युक्त होना जरूरी है। कमरा साफ रहना चाहिये।

२—ओढ़ने और बिछाने तथा अन्यान्य व्यवहारोंमें आनेवाले वस्त्र बिलकुल साफ रहें। जो वस्त्र शरीर पर रहे, उसे प्रति दिन धोकर सुखाना चाहिये। जो वस्त्र रुईदार हो, धोनेके लायक न हो, उसे धूपमें रखकर उसका विकार निकाल देना चाहिये। क्योंकि सूर्यके प्रकाशसे रोगके जन्तु मर जाते हैं और कपड़ेमें बदबू पैदा नहीं होती।

३—जाड़ेके दिनोंमें या और किसी मौसिममें मुँह ढँककर कभी न सोना चाहिये। क्योंकि नाक, मुख और समूचे शरीरसे हर वक्त दूषित हवा निकलती रहती है, और मुख ढँका रहनेसे मनुष्यके भीतर वही दूषित हवा बार-बार जाकर रोग पैदा करती है।

४—ब्रह्मचारीको छः घण्टेसे अधिक नहीं सोना चाहिये। सोते समय दीपकको बुझा देना चाहिये, क्योंकि जलते हुए दीपकसे भी हवा दूषित होती है। सोनेके पहले थोड़ासा जल पीलेना और पेशाब कर लेना चाहिये। क्योंकि मल-मूत्रके वेगको रोकनेसे स्वप्न होनेकी आशंका रहती है साथ ही पेटकी गड़बड़ीसे बीमारियाँ भी पैदा हो जाती हैं।

५—नींद आनेसे पहले भी ईश्वरका स्मरण करके अच्छे विचारोंसे युक्त होना उचित है। ऐसा करनेसे रातमें बुरे स्वप्न नहीं दिखलायी पड़ते। एक बात यह भी है कि ईश्वरका ध्यान करनेसे निद्रा बहुत जल्द आ जाती है।

६—प्रति दिन सवेरे शुद्ध वायुमें टहलना चाहिये। किन्तु टेक

छुड़ानेके लिए नहीं, बल्कि अच्छी तरहसे। कमसे कम दो-चार मीलका चक्कर तो आवश्य ही लगाना चाहिए। इससे एक तो कसरत हो जाती है और दूसरे शुद्ध वायुसे शरीरका आलस्य दूर हो जाता है। बदनमें फुर्त्ती रहती है। काम करनेमें जी खूब लगता है। भूख अच्छी लगती है; शरीरमें ताकत आती है; बहुतसे विकार विना दवा-दारूके ही समूल नष्ट हो जाते हैं।

मल-मूत्रका त्याग

सूर्योदयसे पहले मल मूत्रका त्याग कर डालना चाहिये। प्रातः और सायंकाल दो वार शौच जाना उचित है। कितने ही लोग दो वारसे अधिक और कितने ही मनुष्य केवल एक वार शौच जाने की आदत डालते हैं। किन्तु ये दोनों आदतें ठीक नहीं हैं। जहाँ तक हो सके, खुले मैदानमें शौच होना चाहिये। मल-मूत्रकी हाजत होनेपर उसे कभी न रोको। क्योंकि सारे रोगोंकी जड़ यही है। आलस्यके कारण जो लोग मल-मूत्रके वेगको रोक देते हैं, उन लोगोंका स्वास्थ्य बहुत जल्द खराब हो जाता है।

मल-बद्धतासे वीर्यका नाश होता है। वीर्यका नाश होने से शरीर कमजोर पड़ जाता है और फिर मन्दाग्नि हो जाती है। जब अग्नि मन्द पड़ जाती है, तब पाखाना साफ नहीं होता। मूर्ख लोग कहते हैं कि डाट लगनेसे पाखाना अपने-आप ही होगा। ऐसा समझकर वे खूब डबल खूराक चढ़ा देते हैं। नतीजा यह

होता है कि अन्न पचानेकी शक्ति तो जठराग्निमें रहती नहींवह, भीतर-ही-भीतर सड़कर अत्यन्त बदबूदार और जहरीला बन जाता है। सोचनेकी बात है कि जिस मलके बाहर निकलनेपर उसकी बदबूसे दम घुटने लगता है, उसके भीतर रहनेसे मनुष्य कैसे सुखी और आरोग्य रह सकता है ?

मलको रोकनेसे भीतर की अपान वायु-बिगड़कर मैलेको ऊपरकी ओर चढ़ाने लगती है, जिससे वह खराब मैला फिर जठराग्निमें जाकर पचने लगता है और उससे सारे शरीरका खून गन्दा हो जाता है। लिखा है कि:—

"सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः।"

अर्थात् संसारमें जितने रोग हैं, सब मलके कुपित होनेसे ही होते हैं। इसलिए मल-मूत्र त्यागपर ब्रह्मचारीको पूरा ध्यान रखना चाहिये। हमेशा ठीक समयपर सब कामोंको छोड़कर यह काम कर डालना उचित है। यदि कभी निश्चित समयपर पाखानेकी हाजत न मालूम हो, तब भी शौचके लिए जरूर जाना चाहिये। इससे चाहे पाखाना न भी हो, उसकी गर्मी असर नहीं करती। किन्तु जो लोग ऐसा नहीं करते, हाजतकी बाट जोहते हुए बैठे रह जाते हैं, उनकी आदत बिगड़ जाती है और मलकी गर्मीसे आँखोंकी ज्योति कम हो जाती है, भोजनकी रुचि नष्ट हो जाती है। सिरमें पीड़ा पैदा हो जाती है, ठीकसे भूख नहीं लगती, शरीर आलसी हो जाता है और बल-वीर्य भी क्षीण होने लगता है।

इस प्रकार नाना प्रकारके रोगोंका घर बन जानेवाले शरीरसे न तो ब्रह्मचर्यके नियमोंका पालन हो सकता है और न वीर्यकी रक्षा ही हो सकती है। क्योंकि रोगी मनुष्य कभी भी ब्रह्मचारी नहीं हो सकता। इसलिए पेटकी शुद्धिके लिए ब्रह्मचारीको उचित रीतिसे (आगे बतलाये हुए नियमके अनुसार) भोजन करना चाहिये और मल-मूत्रके वेगको भूलकर भी नहीं रोकना चाहिये। मैलेकी गर्मीसे भीतरकी इन्द्रियाँ क्षुब्ध हो जाती हैं और इन्द्रियोंके क्षुब्ध होनेपर मनुष्य रोगी होनेपर भी कामी बन जाता है। इन्द्रियोंमें अस्वाभाविक उत्तेजनाका आना इन्हीं अनर्थोंका परिणाम है।

इसलिए मल-मूत्रको या अपान-वायुको किसी काममें फँसकर अथवा लज्जाके कारण, जाड़ेके कारण या और किसी कारणसे रोकना अपने स्वास्थ्यको चौपट करना है। ये बातें ब्रह्मचर्यके लिए बड़ी ही हानि पहुँचानेवाली हैं। अतः ब्रह्मचर्य और स्वास्थ्य-रक्षाके लिए सुबह-शाम दो बार नियमित समयपर मल-मूत्रका त्याग करना परम आवश्यक है। किन्तु मल निकालनेके लिए कांखना ठीक नहीं है। क्योंकि इससे वीर्यके बाहर निकल पड़नेकी सम्भावना रहती है।

कोष्ठ-शुद्धिके उपाय

हम पहले ही कह आये हैं कि शरीरमें जितनी बीमारियाँ पैदा होती हैं, सब पेटकी गड़बड़ीसे ही होती हैं। इसलिए ब्रह्मचारीक

पेटकी सफाई पर विशेष ध्यान रखना चाहिये। यदि मनुष्य थोड़ीसी सावधानी रखे, तो वह जन्मभर नीरोग रह सकता है और कभी भी उसे पेटकी शिकायत नहीं हो सकती। इसके लिए नीचे लिखे उपाय विशेष उपयोगी हैं:—

१—अल्प भोजन करना चाहिये। शक्तिसे अधिक भोजन करनेसे पेटमें गड़बड़ी पैदा हो जाती है, क्योंकि जठराग्निपर अधिक भार पड़नेसे वह अन्नको पूर्ण रीतिसे नहीं पचा पाती, इसलिए न पचा हुआ अन्न आमाशयमें चला जाता है और कब्जकी शिकायत सदा बनी रहती है। अन्ततः भयानक रोगोंका आक्रमण होता है।

२—यदि पेटमें कुछ कब्ज मालूम हो तो सबेरे नमक मिले हुए पानीको गरम करके थोड़ासा पी लेना चाहिये और फिर चारपाईपर लेटकर पेटको अच्छी तरहसे दबाकर हिलाना चाहिये। बाद पाखाने जानेसे दस्त साफ होता है। इस प्रकार ७-८ दिन तक करनेसे कब्ज दूर हो जाता है। कब्ज दूर होनेपर इसे छोड़ देना उचित है।

३—प्रति दिन सवेरे आठ घूँट जल पीनेकी आदत डालनी चाहिये। बाद पेटको हिला-डुलाकर शौच जाना उचित है। ऐसा नियमित रूपसे करनेपर कब्जकी शिकायत कभी होती ही नहीं।

४—दिनमें दो-तीन बार पेटको हिलाना चाहिये। इसकी विधि यह है कि दोनों हाथोंसे पेटको एक बार बायीं ओरसे

दाहिनी ओरको दबाना चाहिये और फिर इसी प्रकार दाहिनी ओरसे बायीं ओरको दबाना चाहिये। इस प्रकार एक दफेमें ५-६ बार करनेसे पेटमें कोई शिकायत नहीं रहती। किन्तु यह क्रिया भोजन करनेसे दो घंटेके बाद करनी चाहिये।

गुह्येन्द्रिय-शुद्धि

गुदा और मूत्रेन्द्रियको शुद्ध रखना बहुत जरूरी है। शौच हो चुकनेके बाद गुदा-द्वारको अच्छी तरहसे धोना चाहिये। ऐसा करनेसे एक तो मल साफ होकर गुदा-द्वार शुद्ध हो जाता है, दूसरे इससे वीर्यमें शीतलता आती है; क्योंकि वीर्य-प्रवाहिनी नाड़ी गुदा-द्वारसे होकर ही आयी हुई है। किन्तु गुदा-द्वारको शुद्ध करनेके पहले लिंगेन्द्रियको अच्छी तरहसे धो डालना उचित है। मूत्रेन्द्रियको गन्दा रखना उचित नहीं। इसके धोनेमें ब्रह्मचारी अधिक घर्षण न करे। क्योंकि अधिक घर्षणसे इन्द्रियमें उत्तेजना पैदा होती है और वीर्य गिर जानेकी आशंका रहती है। मूत्रेन्द्रियके अग्रभाग पर ठंढे पानीकी धार छोड़नी चाहिये। क्योंकि इस इन्द्रियमें शरीरकी तमाम नसें इकट्ठी हुई रहती हैं। जिस प्रकार पेड़की जड़को सींचनेसे समूचा पेड़ हरा-भरा रहता है, उसी प्रकार तमाम नसोंकी जड़ रूप मूत्रेन्द्रियको ठंढे पानीकी धारसे शीतल करना समूचे शरीरके लिए गुणकारी है।

इससे मनकी चंचलता नष्ट हो जाती है। वीर्यमें स्तम्भन

शक्ति आती है। इसलिए इस क्रियाको कभी भी भूलना ठीक नहीं। यह ब्रह्मचर्य-पालनकी खास क्रियाओंमें है। किन्तु इस समय मनमें अधिक दृढ़ता, पवित्रता और उच्च विचारोंके लानेकी जरूरत है। जो मनुष्य ऐसा नहीं करता, उसके मनमें इन्द्रिय-स्वच्छताके समय ऐसे बुरे विचार उत्पन्न हो जाते हैं, जिसका परिणाम है वीर्यनाश।

हमारे महर्षियोंने पेशाब करनेके वक्त जल लेकर जानेकी जो आज्ञा दी है, उसका क्या कारण है? यही कि एक तो शुद्धता रहती है, पेशाबके बाद इन्द्रियको धो देनेसे वस्त्रमें पेशाब लगनेकी सम्भावना नहीं रहती, दूसरे ऐसा करनेसे दिनभरमें कई बार इन्द्रिय पर शीतल जल पड़ जाता है, जिससे स्वास्थ्यके लिए भी लाभ पहुँचता है और वीर्य-नाश होनेकी सम्भावना मिट जाती है।

किन्तु दुःखकी बात है कि आजकलके पश्चिमी सभ्यतामें रंगे हुए अर्द्ध शिक्षित भारतीय नवयुवक, बड़े-बड़े मेधावी ऋषियोंके बतलाये हुए नियमोंको अपनी मूर्खताके कारण ढोंग समझते हैं। वे कहते हैं कि ये सब हिन्दूधर्मकी पोप लीलायें हैं, इन्हीं बातोंसे तो हिन्दू-समाज चौपट हो गया। यदि हमारे देशवासी अपने धर्म-ग्रन्थोंमें बतलायी हुई बातोंको श्रद्धाके साथ पढ़ें और उनके मर्म समझनेकी चेष्टा करें तो उन्हें पता लगे कि मुनियोंकी प्रत्येक बातमें कितनी उच्चता भरी हुई है और कितना सार है। किन्तु देशके दुर्भाग्यसे हमारा नवयुवक-सम्प्रदाय इधर ध्यान ही नहीं देता। उससे तो केवल अपने धर्मकी हँसी उड़ानेमें ही अधिक आनन्द मिलता है।

हे प्रभो ! वह दिन कब आवेगा जब हमारे देशके नवयुवकोंका अज्ञानान्धकार दूर होकर उन्हें ज्ञान-दृष्टि प्राप्त होगी ?

मुख-शुद्धि और स्नान

मुखको प्रतिदिन अच्छी तरहसे साफ करना चाहिये। बहुतसे दन्तधावन करनेमें इतनी शीघ्रता करते हैं कि दाँतोंकी मैल ज्यों-की-त्यों बनी ही रह जाती है और वे कर्तव्यसे बरी हो जाते हैं। दन्तधावन करना मानो ऐसे लोगोंके लिए जवालसा मालूम होता है। वे समझते हैं कि यह भी एक धार्मिक काम है, जरासा करके टेक छुड़ा देना चाहिये। किन्तु वे यह नहीं जानतेकि यह स्वास्थ्य की रक्षाके लिए है। इसमें शीघ्रता करनेसे बड़ा कष्ट होता है और कुछ ही दिनों में कितने ही अप्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष रोग आ घेरते हैं। मूर्खलोग धर्म समझकर तो कुछ काम करते भी हैं, किन्तु तन्दुरुस्तीके लिए एक भी काम नहीं करना चाहते। वे यह नहीं समझते कि तन्दुरुस्तीको ठीक रखनेके लिए जितने काम किये-जाते हैं, उन सभोंका समावेश भी धर्म-हीके अन्तर्गत हो जाता है। क्योंकि शरीर ही तो मुख्य चीज है। जब शरीर ही न रहेगा, तब धर्म होगा किससे ? कौन धर्म करेगा ?

अतएव ब्रह्मचारीको मुखकी शुद्धि रखनी चाहिये। जो लोग मुखकी शुद्धिपर ध्यान नहीं देते, उनके दाँतोंमें कृमि पैदा हो जाते हैं और असह्य पीड़ा होने लगती है। दूसरी बात यह भी है कि

जो कुछ आहार शरीरको दिया जाता है, वह सब मुख-द्वारसे होकर ही भीतर जाता है। इसलिए मुख गन्दा रहनेसे मुखमें जाते ही शुद्ध आहार भी दूषित हो जाता है। परिणाम यह होता है कि मनुष्य तो अपनी समझसे शुद्ध आहार करता है, पर वहाँ जठराग्निको दूषित और विषैले पदार्थ मिलते हैं। क्योंकि दाँतोंमें मैल बैठनेसे एक प्रकारका दुर्गन्धि-युक्त विष पैदा हो जाता है। और इस प्रकारकी असावधानीका कुफल समूचे शरीरको भोगना पड़ता है।

मुखकी सफाई करनेके बाद देहकी सफाई करनेके लिए स्नान करना चाहिये। ये दोनों काम सूर्योदय से पहले कर डालना चाहिये। ब्रह्मचारीके लिए कायिक, वाचिक और मानसिक शुद्धि-की ओर ध्यान रखना विशेष प्रयोजनीय है। गन्दे शरीरसे मन भी गन्दा रहता है। गन्दगी रोगका घर है। इसलिए शरीरको शुद्ध रखनेके लिए प्रतिदिन सवेरे स्नान करना बहुत जरूरी है। इसमें शरीरके सब छिद्र खुल जाते हैं। छिद्रोंका खुला रहना स्वास्थ्यके लिए बड़ा आवश्यक है। क्योंकि मनुष्य केवल नाकसे ही साँस नहीं लेता, बल्कि शरीरके रोम-कूपों द्वारा भी वह साँस लिया करता है। इसलिए गन्दगी रखनेसे ये ढँक जाते हैं और उचित रीतिसे इनके द्वारा शरीरका काम नहीं हो पाता। इन छिद्रोंके बन्द रहनेसे नाक-मुखके खुले रहने पर भी हम जीवित नहीं रह सकते।

इसलिए प्रत्येक स्त्री-पुरुषको चाहियेकि वह शरीरकी स्वच्छ-

तामें कभी आलस्य न करें और प्रतिदिन घर्षण-स्नान किया करें। घर्षण-स्नान कहते हैं, खूब मल-मलकर स्नान करनेको। घर्षण-स्नानसे त्वचाके सब छिद्र खुल जाते हैं और भीतरके दूषित पदार्थ पसीनेके रूपमें बड़ी आसानीसे बाहर निकल जाते हैं। इसी प्रकार बाहरकी शुद्ध हवा भी भीतर जाती है। घर्षण-स्नानसे मनुष्य तेजस्वी, आरोग्य, विकार-रहित और वीर्य-रक्षक बन जाता है। सब जगह पवित्रता ही जीवन है और अपवित्रता ही मरण है। हमलोग बहुधा स्नान करनेमें जल्दीबाजी किया करते हैं; एक-दो लोटा पानी शरीर पर डाला, कहीं शरीर भींगा और कहीं नहीं, हाथ लगाना या शरीरको मलना तो मानो पाप है, बस स्नान हो गया। किन्तु यह बात बहुत बुरी है। यदि सच पूछा जाय तो इसे स्नान कहा ही नहीं जा सकता। क्योंकि ऐसे स्नानसे तो कोई लाभ नहीं होता, बल्कि कुछ-न-कुछ हानि ही होती है। कारण यह कि भीतरी गर्मी ऊपर आ जाती है और उसकी शान्ति नहीं होती, अतः हानि पहुँचाती है। जबतक स्नान करनेसे शरीरमेंका जहर न निकल जाय, तबतक उसे स्नान कहना ही व्यर्थ है। इसलिए ब्रह्मचारीको खूब रगड़-रगड़कर शरीरके प्रत्येक अँगको साफ करके स्नान करना चाहिये।

जाड़े और बरसातमें चाहे कम समयतक स्नान करे, पर गर्मीके दिनोंमें आधघंटे से कम स्नान नहीं करना चाहिये। इतनी देरतक स्नान करनेसे मस्तिष्क ठंढा पड़ जाता है। जिन लोगोंको स्वप्नदोष होता हो, उन्हें तो इसी प्रकार शामके वक्त भी नहाना

चाहिये। स्नान हमेशा ठंढे पानीसे करना विशेष लाभदायक है। गर्मीके दिनोंमें प्रत्येक स्त्री-पुरुषके लिए दोनों वक्तका नहाना बड़ा लाभदायक है। जाड़ेके दिनोंमें भी ठण्ढे पानीसे ही नहाना अच्छा है। जो लोग इतनी सर्दी न सहन कर सकें, उन्हें गरम पानीसे नहाना उचित है; किन्तु ऐसे लोगोंको भी सिरपर ठण्ढा पानी ही छोड़ना चाहिये। कारण यहकि मस्तकमें शरीरके सब अंगोंसे बहुत अधिक गर्मी रहती है। अतः गरम पानी डालनेसे मस्तिष्कमें तरावट नहीं आती, उसकी गर्मी बनी ही रह जाती है।

नहानेके लिए स्वच्छ जलवाली नदी विशेष उत्तम है। यदि नदीमें स्नान करना सुलभ न हो, तो कुएँके ताजे पानीसे स्नान करना चाहिये। कूप-जल सब ऋतुओंमें नहानेके योग्य रहता है। क्योंकि यह जल जाड़ेमें गर्म और गर्मीमें शीतल रहता है। स्नानमें हाथसे शरीरको रगड़ना विशेष उपकारी है। कारण यहकि इससे शरीरमें एक प्रकारकी बिजली पैदा होती है। इसलिए सब अंगोंको बिजलीकी शक्ति देनेके लिए प्रत्येक अंगको खूब रगड़ना चाहिये। जो अंग नहीं रगड़ा जाता, वह कमजोर पड़ जाता है। इसी प्रकार पेटको भी खूब रगड़ना उचित है। इससे कब्ज नहीं होता और पेटमें कभी कड़ापन नहीं आता।

कभी-कभी साबुन और गरम पानीसे स्नान करते रहना बड़ा ही स्वास्थ्य-प्रद है। क्योंकि इससे त्वचायें खूब साफ रहती हैं। किन्तु प्रति दिन गरम पानीसे नहाना ब्रह्मचर्य के लिए हानिकारक है। वास्तवमें यह अप्राकृतिक स्नान है। इस प्रकारके स्नानसे

मनुष्य कमजोर, नाजुक तथा विषयी बन जाता है। यदि नदीका नहाना सुगम हो, तो प्रतिदिन नदीमें स्नान करना चाहिये। नदी-स्नानमें एक पन्थ दो काज हैं। स्नान भी हो जाता है और तैरनेसे कसरत भी हो जाती है।

तैरनेमें बहुतसे गुण हैं। तैरनेसे पूरी कसरत हो जाती है और सब अंगों पर काफी जोर पड़नेके कारण शरीर पुष्ट हो जाता है; फेफड़े शुद्ध और बलवान होते हैं। शरीरमें फुर्ती आ जाती है। उत्साह बहुत बढ़ जाता है। इससे पाचनक्रिया भी बढ़ जाती है। किन्तु यह स्मरण रहे कि स्नान के बाद तुरन्त भोजन करना बड़ा हानिकारक है। क्योंकि इससे पाचनक्रिया बिगड़ जाती है और शरीर-स्थित पित्त कुपित हो जाता है। इसलिए ब्रह्मचारियोंको चाहिये कि वे स्नान करनेके बाद तुरन्त ही न तो भोजन ही करें और न भोजनके बाद तुरन्त स्नान ही करें। ये दोनों ही बातें अत्यन्त हानिकारक हैं। स्नान करनेके कमसे कम डेढ़ या दो घण्टेके बाद भोजन करना तथा भोजनके दो-तीन घण्टे बाद स्नान करना हितकर है। पर सबसे अच्छा तो यह हो कि स्नानके बाद ही भोजन करनेकी आदत डालनी चाहिये, भोजनके बाद स्नान करना बिलकुल भद्दा, अस्वाभाविक और उतना लाभदायक भी नहीं है जितना कि होना चाहिये।

इस प्रकार अच्छी तरहसे स्नान कर चुकनेके बाद सूखे तौलियेसे शरीर को भली भाँति पोंछ डालना चाहिये। बाद सूखा वस्त्र पहन लेना चाहिये। ऊपर कही गयी रीति से प्रति दिन

स्नान करनेवाले मनुष्य सदा आरोग्य प्रसन्न चित्त और पवित्र रहते हैं। महीने दो महीने तक उक्त रीतिसे स्नान करनेवालोंको अपने आपही अनुभव हो सकता है कि इस प्रकारके स्नानसे क्या लाभ हैं। नदीके बाद तालावका स्नान भी अच्छा है, पर अधिकांश स्थानोंके तालाव बहुत गन्दे होते हैं, इसलिए उनमें स्नान करना हानिकारक है। ऐसे तालाबोंके स्नानसे कुएँके पानीसे स्नान करना ही अच्छा है। क्योंकि स्नान करनेके लिए बहुत शुद्ध जल होना चाहिये। जिन तालाबोंका पानी गन्दा रहता हो, जो तालाव वस्तीके समीप हों, उनमें भूलकर भी स्नान नहीं करना चाहिये।

आहार

आहारसे ब्रह्मचर्यका बड़ा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। आहार ही शरीरका सर्वस्व है। शरीरको जैसा आहार दिया जाता है, वैसे ही उसके अंग-प्रत्यङ्ग हो जाते हैं। किन्तु आहार यानी भोजनके महत्त्वको सब लोग नहीं जानते। यही कारण है कि ऐसे लोग सदा दुखी रहते हैं। ब्रह्मचारियोंको आहारपर पूरा ध्यान देना चाहिये। आहार सात्त्विक, राजस और तामस भेदसे तीन प्रकारका होता है। आहारसे आयु, बल-वीर्य, सुख और प्रीतिकी वृद्धि होती है। सात्त्विक आहारसे बुद्धि सात्त्विकी होती है, राजसिकसे बुद्धि राजसी और तामसिक आहारसे बुद्धि तामसी होती

है। इसलिए ब्रह्मचारीको सदा सात्विक आहार ही करना चाहिये। अब तीनों प्रकारके आहारोंका निर्णय देखिये :—

सात्विक आहार—जो ताजा, रस युक्त, हलका, सादा, स्नेहयुक्त, मधुर और प्रिय हो। जैसे गेहूँ, चावल, मूँग, दूध, घी, चीनी, नमक, शाक, फलादि सात्विक आहार हैं।

राजसिक आहार—जो अत्यन्त गर्म, चटपटा, कड़वा, तिक्त, नमकीन, खट्टा, तैलयुक्त, गरिष्ठ, और रूखा हो। जैसे—तरह तरहकी गन्दी और अपवित्रताके साथ बनी हुई मिठाइयाँ, चटनी, अचार, लालमिर्च, हींग, प्याज, लहसुन, मांस, मछली, चाय, गाँजा, भाँग, अफीम, शराब, चण्डू, चरस, बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू, सोडा, लेमुनेड, आदि।

तामसी आहार—वह है जो बासी, रसहीन, दुर्गन्धित, गला हुआ तथा विषम हो (जैसे घी और तेलके मिश्रणसे बने हुए पदार्थ) तामसी आहारसे मनुष्यकी राक्षसी बुद्धि हो जाती है। ऐसा आहार करनेसे मनुष्य दुखी, बुद्धिहीन, क्रोधी, अधर्मी, झूठ बोलनेवाला, हिंसक, लालची, आलसी और पापी हो जाता है।

राजसी आहार यद्यपि तामसीकी अपेक्षा अच्छा है तथापि वह भी ब्रह्मचारीके लिए हानिकारक है। क्योंकि राजसी आहारसे मन चञ्चल, कामी, क्रोधी, लालची और शोक-युक्त होता है।

अतएव ब्रह्मचारीको सदा सात्विक भोजन करना चाहिये। इसके अलावा भोजनकी मात्रा भी हलकी होनी चाहिये। क्योंकि अधिक भोजन करनेसे शरीरमें भारीपन रहता है, हर समय सुस्ती

बनी रहती है। शास्त्रीय नियम तो यह है कि पेटको आधा अन्नसे, चौथाई जलसे भरकर एक चौथाई वायुके लिये खाली रखना उचित है। यह याद रहे कि सात्त्विक भोजन भी बासी हो जानेसे तामसी हो जाता है और अधिक खा लेनेसे राजसी बन जाता है।

भोजन करनेमें शीघ्रता करना उचित नहीं। क्योंकि जो भोजन खूब कुचल-कुचलकर नहीं खाया जाता, वह यथेष्ट रीतिसे जैसा कि पचना चाहिये नहीं पचता। वह भोजन जल्द पचता और विशेष हितकारी होता है, जो अच्छी तरहसे कुचलकर खाया जाता है। इससे थोड़े भोजनमें काम भी चल जाता है, पाखाना भी साफ होता है। कम-से-कम एक ग्रासको तीस बार कुचलना चाहिये। इस रीतिसे भोजन करना वीर्य-रक्षाके लिए बड़ा ही हितकारक है।

भोजन करते समय खूब शान्त और प्रसन्न रहना चाहिये। क्रोधके साथ जो भोजन किया जाता है, वह सात्त्विक रहनेपर भी राजसी हो जाता है। बहुतसे लोग अधिक विषय करनेके लिए खूब हलुआ, मलाई आदि पौष्टिक पदार्थ खाते हैं। वे समझते हैं कि इन चीजोंसे वीर्यके नाशका असर शरीरपर नहीं पड़ेगा। किन्तु यह उनकी भूल है। क्योंकि ये चीजें अच्छे-अच्छे कसरती पहलवानोंके पेटमें बड़ी कठिनाईसे पचती हैं, फिर विलासी मनुष्य इन्हें कैसे पचा सकता है। कारण यह कि जो मनुष्य अधिक विषय करता है, वह तो स्वाभाविक ही बहुत जल्द कम-जोर हो जाता है। ऐसा करनेका फल यह होता है कि पेटमें

तरह-तरहकी बीमारियाँ हो जाती हैं और अन्तमें उसकी मृत्यु हो जाती है।

अतः ब्रह्मचारियोंको चाहिये कि वे मिठाई, खटाई तथा मसालेदार चीजें खाकर चटोरे न बनें। सदा सादा और स्वच्छ भोजन करें। चटपटी चीजें ब्रह्मचर्यमें बाधा पहुँचाती हैं। लाल मिर्च तो ब्रह्मचर्यके लिए प्रत्यक्ष काल समझिये। इसलिए इन चीजोंको धीरे-धीरे कम करके कुछ दिनोंमें एक दम त्याग देना उचित है।

दिनभरमें केवल दो बार भोजन करना उचित है। पहला भोजन १०-११ बजे और दूसरा शामको आठ बजे करना ठीक है। रातके भोजनके कुछ देर बाद थोड़ा गरम किन्तु ठण्ढा दूध चीनी डालकर पी लेना चाहिये। बहुतसे लोग दूधका बर्तन मुँह में लगाते ही एक साँसमें गटक जाते हैं। यह आदत बहुत बुरी है। दूध या पानी धीरे-धीरे पीना चाहिये। जिस प्रकार लोग गरम चायको थोड़ा-थोड़ा करके धीरे-धीरे पीते हैं, उसी प्रकार दूध और पानी भी पीना चाहिये। बहुत गरम भोजन कभी न करना चाहिये, क्योंकि इससे वीर्य पतला पड़ जाता है। इसके अलावा गरम भोजनसे दाँतोंपर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। किन्तु अधिक देरका बना हुआ भोजन भी नहीं करना चाहिये; क्योंकि देरका बना हुआ भोजन विकार-युक्त हो जाता है। इसी प्रकार कहीं से थककर आते ही भोजन कर लेना भी उचित नहीं है। भोजनके बाद एक घण्टे तक शारीरिक या मानसिक श्रम नहीं करना चाहिये। भोजनके समय यदि पानी न पिये तो बड़ा अच्छा हो। इससे भोजन

जल्द पचता है। यदि पानी पिये बिना न रहा जाय तो थोड़ासा पानी पी लेना चाहिये। पर जहाँ तक हो सके, बिलकुल न पिये और भोजन कर चुकनेके घण्टेभर बाद अपनी इच्छाके अनुसार पानी पी ले। भोजनके बाद सौ क़दम धीरे-धीरे टहलना चाहिये। भोजन करते ही चारपाई पर पड़ जाना अच्छा नहीं है।

फलाहार—अन्नकी अपेक्षा फलोंमें बहुत अधिक सात्विकता है। कारण यह कि फलोंमें प्राकृतिकता विशेष है। अन्न खाने-वालों के लिए भी थोड़ा-बहुत फल खाना बहुत आवश्यक है। क्योंकि फलोंमें सञ्जीवनी शक्ति बहुत रहती है। भोजन करनेके दो घण्टे बाद फल खाना अच्छा है। वीर्य-रक्षाके लिए फलोंका खाना बड़ा ही लाभदायक है। फलों से नीचे लिखे लाभ होते हैं:—

१—फलोंसे आयुकी वृद्धि होती है, तन्दुरुस्ती ठीक रहती है, बदनमें ताक़त आती है, बुद्धि निर्मल होती है और काम-विकार उत्पन्न नहीं होता। इससे चित्त भी खूब प्रसन्न रहता है, शरीर हलका रहता है।

२—पाखाना साफ़ होता है, निर्बलता पासमें फटकने नहीं पाती, कभी क़ब्ज़ नहीं होता, ज्वरादि रोगोंसे रक्षा होती है।

३—मनसे बुरी वासनायें निकल जाती हैं, सुन्दर भावनायें उत्पन्न होती हैं, काम-क्रोध-लोभ-मोहादि विकार दूर हो जाते हैं तथा हृदयमें अद्भुत शान्तिका सञ्चार होता है।

४—वीर्य पुष्ट होता है, शरीरकी कान्ति बढ़ जाती है और मानस शुद्ध हो जाता है।

फलोंमें सूर्यतेज और बिजली बहुत भरी रहती है, इस कारण फलाहारीको सहसा कोई रोग नहीं हो सकता। फलाहारसे बुद्धि भी तीव्र हो जाती है। हमारे पूर्वजोंका कन्द-मूल-फल ही मुख्य आहार था, यही कारण है कि वे इतने तेजस्वी, बुद्धिमान सदाचारी और शक्ति-सम्पन्न थे, जिनकी ज्ञान-गरिमाकं देखकर सारी दुनिया आज भी हैरान हो रही है। किन्तु हम उन्हींकी सन्तान होकर मूर्ख और दब्बू बने बैठे हैं। इसका कारण यही है कि हम प्राकृतिक नियमोंका पालन न करके रात-दिन वीर्य-नाशके उपायोंमें लगे रहते हैं। अतः अपने पूर्वजोंकी भाँति सदाचारी और ब्रह्मचारी होनेके लिए इसी बातकी आवश्यकता है कि हमारा आहार ठीक हो।

दुग्धाहार—दूध संसारमें अमृत कहलाने योग्य है। वास्तवमें दूधसे उत्तम कोई भी खाने-पीनेकी चीज नहीं है। सबसे उत्तम और गुणकारी दूध गायका होता है। यही कारण है कि पुराने ज़माने में सर्वस्व-त्यागी ऋषि मुनि लोग भी गो-दुग्धके लिए गौएँ पालते थे। खासकर धारोष्ण दूधमें बहुतसे गुण हैं। कुछ गुण नीचे लिखे भी जाते हैं :—

१—गायका ताज़ा दुहा हुआ दूध सवेरे पीनेसे शरीरमें बल-वीर्यकी वृद्धि होती है। मनको शान्ति मिलती है।

२—तत्क्षण शरीरमें फुर्ती आ जाती है, साहस बढ़ जाता है, आलस्य दूर हो जाता है दिमाग़में तरी रहती है।

३—बुद्धि पवित्र होती है, विचारोंमें उच्चता हो जाती है, तथा धातु-गत कई तरहके रोग नष्ट हो जाते हैं।

४—गायका दूध हलका होता है, इसलिए जल्द पचता है।

यदि गायका दूध न मिले तो भैंसके दूधका सेवन करना उचित है। भैंसका दूध गायके दूधकी अपेक्षा अधिक गरिष्ठ होता है। दूध देनेवाली गाय या भैंसको शुद्ध तृण-चारा खिलाना चाहिये। क्योंकि जैसा आहार दिया जाता है, वैसा ही दूधका गुण होता है। जो गाय रोगी हो, अशुद्ध और हानिकारक चीजें खाती हो, उसका दूध कभी न पीना चाहिये। इसलिए समझदार लोग बाजारू दूध नहीं पीते।

दूधको बिना कपड़ेसे छाने कभी नहीं पीना चाहिये। गरम दूधमें उतनी प्राणशक्ति नहीं रह जाती, जितनी कि ताजे और कच्चे दूधमें रहती है। दुहनेके आधा घण्टा बाद दूधमें विकार पैदा हो जाता है इसलिए देरके दुहे हुए दूधको बिना उबाले नहीं पीना चाहिये।

चौथा प्रकरण

संगति

ब्रह्मचारीके लिए संगतिपर पूरा ध्यान देना चाहिये; क्योंकि जैसे मनुष्यका साथ पड़ता है, वैसा ही हृदय हो जाता है। इसलिए हमेशा बड़ोंकी संगति करनी चाहिये। सत्संगसे मनुष्यका जितना सुधार होता है, उतना और किसीसे नहीं। सत्संगकी महिमा ही अपरम्पार है। इसीसे गुसाईंजीने लिखा है:—

"तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला इक अंग।
तुलै न ताहि सकल सुख, जो सुख लव सतसंग॥"

—रामचरित-मानस।

सत्संगके प्रभावसे अधम स्वभाववाले साधु और सदाचारी बन जाते हैं। कुसंगमें पड़नेसे मनुष्यका जीवन ही नष्ट हो जाता है। फिर वह किसी कामके लायक नहीं रह जाता।

"वरु भल वास नरक कर ताता।
दुष्ट संग जनि देहिं विधाता॥"

—रामचरित-मानस।

इसीलिए अच्छे और बड़े लोग बुरे आदमियोंसे सदा दूर रहते हैं। इस बातका दावा कोई भी नहीं कर सकता कि मैं कुसंगमें रहकर भी अपने धर्मका पालन करता रहूँगा। क्योंकि ऐसा दावा करना विषपान करके जीवित रहनेका दावा करनेके समान है। अतएव ब्रह्मचारियोंको उचित है कि वे कुसंगसे सदा दूर रहें। बुरे लोगोंकी हवा भी अपने शरीरमें न लगने दें।

ब्रह्मचारियोंको सदा सत्संगमें ही रहना चाहिये। संसारमें जितने साधन मौजूद हैं, उन सबमें सत्संग सबसे श्रेष्ठ उपाय है। जगद्‌गुरु शंकराचार्यने लिखा है:—"सत्संगसे निःसंगकी प्राप्ति होती है। निःसंगसे निर्मोहत्त्व होता है; निर्मोहत्त्वसे सत्यका यथार्थ ज्ञान और निश्चय होता है। वह मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है, यानी भवसागरसे पार हो जाता है

गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है,—"सठ सुधरहिं सत-संगति पाई। पारस परसि कुधातु सुहाई॥" वास्तवमें यह कथन बहुत ही ठीक है। एक समय विष्णु भगवान्‌ने राजा बलिसे पूछा,—तुम सज्जनोंके साथ नरकमें जाना पसन्द करते हो या दुर्जनोंके साथ स्वर्गमें ? बलिने तत्काल उत्तर दिया कि, मुझे सज्जनोंके साथ नरकमें जाना ही पसन्द है। विष्णु भगवान्‌ने पूछा,—सो क्यों ? बलिने कहा,—जहाँ सज्जन हैं, वहीं स्वर्ग है और जहाँ दुर्जन हैं, वहीं नरक है। दुर्जनोंके निवाससे स्वर्ग भी नरक बन जाता है और सज्जनलोग नरकको भी स्वर्ग बना देते हैं। सज्जनलोग जहाँ रहेंगे, वहीं सब कुछ रहेगा।

ग्रंथावलोकन

उत्तम ग्रंथ भी मित्रके समान ही उपकारी होते हैं। जहाँ सत्संग न हो, वहाँ सद्ग्रन्थोंहीकी संगति करनी चाहिये। सद्ग्रन्थोंसे मनुष्यको हर समय शान्ति मिलती है। आजतक जितने महात्मा हुए हैं, सब सद्ग्रन्थों और सन्मित्रोंके ही प्रभावसे। उच्चकोटिके ग्रंथोंद्वारा ही ज्ञानका कोष संसारमें सुरक्षित है। जिसने इनकी आराधना की उसे कुछ-न-कुछ अवश्य मिला।

सद्ग्रन्थोंके पठन-पाठनसे मनकी सारी कुचिन्तायें मिट जाती हैं; संशय दूर हो जाता है और मनमें सद्भाव जागृत हो जाता है। ज्ञानानन्दके सामने विषयानन्द फीका पड़ जाता है। अतः ब्रह्मचारीको प्रतिदिन सन्ध्या-सबेरे अथवा फुर्सतके समय पवित्रता और एकाग्रतापूर्वक किसी पवित्र ग्रंथका पाठ और मनन करना चाहिये। अपने दिलमें यह निश्चय कर लेना चाहिये कि प्रति दिन मैं इतना पाठ करके तब अन्न और जल ग्रहण करूँगा। ऐसा निश्चय कर लेनेसे मनुष्यके भीतर अद्भुत शक्ति पैदा होने लगती है। ब्रह्मचर्यकी रक्षाके लिए योगवाशिष्ठ, गीता, रामायण, दासबोध, आदि पुस्तकें विशेष उपकारी हैं।

जिस प्रकार कुसंगसे सर्वनाश हो जाता है, उसी प्रकार बुरी पुस्तकें पढ़नेसे भी जीवन बर्बाद हो जाता है। इसलिए ब्रह्मचारीको चाहिये कि वह शृंगाररसपूर्ण अथवा मनमें बुरे भाव उत्पन्न करनेवाली पुस्तकें कभी न पढ़े। बुरी पुस्तकोंके पढ़ने और

सुननेसे सच्चरित्र बच्चे भी दुश्चरित्र हो जाते हैं। इसलिए ऐसी पुस्तकें त्याग दो। बुरी पुस्तक पढ़ना और विष खा लेना बराबर है। अतः मूर्खतासे कभी कोई गन्दी पुस्तक न पढ़ बैठो। कारण यह कि बुरी बातें जल्द मनमें बैठ जाती हैं, पर अच्छी बातें जल्द नहीं बैठतीं। आजकल अश्लील तथा लज्जाजनक पुस्तकोंका खूब प्रचार हो रहा है। इन बुरी पुस्तकोंसे ब्रह्मचर्यका विशेष रूपसे पतन होता है।

अतः जो लोग वीर्य-रक्षा करना चाहें, वे बुरी पुस्तकें भूलकर भी हाथसे न छुयें। ब्रह्मचारीको चाहिये कि वह अवकाशके समय सदाचार, नीति, धर्म तथा गम्भीर विषयोंकी पुस्तकें पढ़े; जैसे, गीता, रामायण, मनुस्मृति, दर्शन-शास्त्र आदि; उत्तमोत्तम महापुरुषोंकी जीवनियाँ पढ़े; जैसे स्वामी रामतीर्थ, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, लोकमान्य तिलक, तुकाराम आदिके जीवनचरित।

अच्छी पुस्तकोंके निरन्तर पाठसे कर्मनिष्ठा, प्रसन्नता, धीरता, विचारशक्ति, दया और बहुज्ञता प्राप्त होती है; चिन्ता, भय, पराधीनता, द्वेष-भाव और अहंकारादि दुर्गुण दूर हो जाते हैं। मन और मस्तिष्कको अपूर्व शान्ति मिलती है। मनुष्य उद्योगी, परिश्रमी तथा विचारवान हो जाता है। इसलिए ब्रह्मचारीको अध्ययनशील बनना चाहिये।

पवित्र-दृष्टि

संसारकी प्रत्येक वस्तुमें गुण और दोष दोनोंका समावेश है। जिस वस्तुसे हमारे जीवनकी रक्षा होती है, उसी वस्तुसे हमारा संहार भी हो सकता है। उदाहरण लीजिये, भोजनसे हमारी वृद्धि होती है, और उसीसे कभी-कभी हमारा नाश भी हो जाता है। ठीक यही हाल आँखोंका भी है। शरीरमें आँख बड़ी ही जरूरी इन्द्रिय है। इसके बिना मनुष्यको बड़ा कष्ट होता है। किन्तु इन आँखोंद्वारा ही मनुष्यका पतन भी हो जाता है। इसलिए ब्रह्मचारीको पतनकी ओर कभी न झुकना चाहिये। जो मनुष्य स्त्रियोंकी ओर अधिक ताकता है, संसारकी नाना प्रकारकी चीजोंको पानेके लोभसे देखता है, वह अवश्य नष्ट जाता है। किसी स्त्रीका ध्यान करना, उसकी सूरत देखनेके लिए लालायित होना, युवतियोंकी ओर घूरकर देखना, ब्रह्मचर्यका घातक है।

इसलिए ब्रह्मचारीको पवित्र-दृष्टि रखनी चाहिये। यदि किसी स्त्रीका स्मरण आ जाय तो फौरन अपनी माताके स्वरूपका ध्यान करना चाहिये अथवा परमात्माके मनोहर स्वरूपमें मन लगाना चाहिये। इस प्रकार अपनी माँ या ईश्वरको उस स्त्रीमें देखने लगो। यदि किसी स्त्रीके किसी अंगका स्मरण हो आवे, तो अपनी माताके उसी अंगका स्मरण करो। इससे तुम्हारे भाव दूषित होनेसे सहजहीमें बच जायँगे और तुम्हारी पापपूर्ण वासनाओंका अन्त हो जायगा। किसी स्त्रीसे बातचीत न करो। यदि

कभी कोई ऐसा प्रसंग आ जाय कि बिना बात किये काम न चल-सके, तो आवश्यकीय बातें कर लो, किन्तु अपनी माँ या बहनकी दृष्टिसे उस स्त्रीको देखते हुए। इसका मतलब यह नहीं है कि उस स्त्रीकी ओर ताकते रहो। ऐसा कभी नहीं करना चाहिए; आँखें नीची किये रहना ही उचित है। हमारे कहनेका मतलब यह है कि नीची निगाह किये रहनेपर भी यदि मनश्चक्षु उस स्त्रीके स्वरूपको देखनेमें व्यस्त रहे; तो माँ और बहनके रूपमें उसे देखो। ऐसा भाव रखनेसे ब्रह्मचारीके व्रतका पालन होता है।

यदि कभी किसी बुरी वस्तुपर दृष्टि पड़ जाय, तो फौरन अपनी दृष्टिको समेट लो और ईश्वर-चिन्तनकी ओर मन लगा दो। ऐसा करनेसे तुम्हारे मनमें उस बुरे दृश्यका कुसंस्कार नहीं पड़ने पावेगा और तुम्हारी पवित्रता ज्योंकी-त्यों बनी रहेगी। किन्तु सदा सतर्क रहनेसे ही मनुष्य अपनेको बचा सकता है, अन्यथा नहीं।

पाँचवा प्रकरण

बाल-शिक्षा

दुःखकी बात है कि आजकल मूर्खताके कारण बालक-बालिकाओंको उचित शिक्षा नहीं दी जाती, इसलिए बचपनमें ही उनकी आदतें खराब हो जाती हैं। माता-पिताका धर्म है कि वे अपने बच्चोंको पूर्ण रीतिसे नैतिक शिक्षा दें। पाठशालामें पढ़नेके लिए भर्ती करा देना किसी कामका नहीं यदि उन्हें नैतिक शिक्षा न दी जाय। आवश्यकता इस बातकी है कि बच्चोंमें चरित्र-बल पैदा हो और वे सदाचारी बनें। किन्तु यह तभी हो सकता है, जब प्रथम-हीसे बच्चोंपर दृष्टि रखी जाय। इसके लिए नीचे लिखी बातोंपर ध्यान देना जरूरी है:—

१—लड़के बुरी संगतिमें न पड़ने पावें। किसी अपरिचित युवकके साथ न रहने पावें। खेलें-कूदें खूब, पर अच्छे लड़कोंके साथ। रातमें किसी बिराने आदमीके पास न सोवें।

२—चटपटी चीजें खिलाकर बच्चोंकी जबान न बिगाड़े। गरम बिस्तरेपर न सुलावे। औंधा भी न सोने दे।

३—शिक्षापूर्ण कहानियाँ सुनावे। वीरोंकी जीवनियाँ सुनाकर वीरताका भाव उत्पन्न करे। विवाहादिकी कोई भी बात उनसे न कहे। स्त्री-पुरुषके गुप्त-जीवनका प्रकाश उनपर जरा भी न पड़ने दे।

४—इन बातोंका पहले-हीसे अभ्यास डाले:—बड़ोंकी सेवा और उनकी आज्ञाका पालन, सहन शीलता, सत्यता, आलस्यका त्याग, निरभिमान, परिश्रमकी बान, दृढ़ता, साहस, ईश्वरोपासना और प्रत्येक वस्तुसे कुछ-न-कुछ शिक्षा लेनेकी चेष्टा। किसके साथ कैसा बर्त्ताव करना चाहिये, इसकी भी उनमें ज्ञान होना जरूरी है।

ऊपर की बातोंपर ध्यान रखनेसे बच्चोंकी आदत नहीं बिगड़ने पाती और वे ब्रह्मचर्यका पालन करनेमें समर्थ होते हैं।

ब्रह्मचर्यपर अथर्ववेद

अथर्व वेदमें ब्रह्मचर्यका प्रकरण बड़ा ही सुन्दर है। पाठकोंके लाभार्थ यहाँ उसका कुछ अंश दिया जाता है। इस व्याख्यामें सृष्टि-को ब्रह्मचारी बनाकर यह दिखलाया गया है कि इसी प्रकार मनुष्य को भी ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये। पहले श्रेष्ठ ब्रह्मचारीका कर्त्तव्य देखिये। लिखा है कि:—

ब्रह्मचर्येति समिधा समिद्धः कार्ष्णं
वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः ॥

स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं
लोकान्त्संगृभ्य मुहुराचरिक्रत् ॥

अर्थात् तेजसे प्रकाशित कृष्णचर्म धारण करता हुआ, व्रतके अनुकूल आचरण करनेवाला और बड़ी-बड़ी दाढ़ी-मूँछ धारण करनेवाला ब्रह्मचारी प्रगति करता है। वह जनताको एकत्र करता हुआ बारम्बार उनको उत्साह प्रदान करता है और पूर्वसे उत्तर समुद्रतक शीघ्र ही पहुँचता है।

इस मंत्रके पूर्वार्द्धमें कृष्णचर्म लिखकर ब्रह्मचारीके सादेपनकी सूचना दी गयी है। इस प्रकारसे रहकर विद्याध्ययन करनेके बाद ब्रह्मचारी तमाम लोगोंको महान् कर्ममें प्रवृत्त करता है। इस प्रकार वह ब्रह्मचर्य्याश्रम रूपी पूर्व अवस्थासे गृहस्थाश्रम रूपी उत्तर अवस्थामें प्रवेश करता है और संसार-सागरमें अपनी जीवन-नौकाको चलाता है। जनताकी उन्नति करनेके लिए जिन कामोंका करना आवश्यक होता है, उन्हें वह करता है। इसका विचार आगेके मंत्रमें है—

ब्रह्मचारी जनयन्ब्रह्मापोलोकं प्रजापतिं परमेष्ठिनं विराजम्।
गर्भो भूत्वाऽमृतस्ययोनाविंद्रोह भूत्वाऽसुरांस्ततर्ह ॥

जो ज्ञानामृतके केन्द्र-स्थानमें गर्भरूप रहकर ब्रह्मचारी हुआ, वही ज्ञान, कर्म, जनता, प्रजापालक राजा और विशेष तेजस्वी परमात्माको प्रकट करता हुआ, इन्द्र बनकर अवश्यमेव राक्षसोंका नाश करता है।

तात्पर्य यह कि आचार्यके पास नियम,रूप गर्भमें रहकर विद्याध्ययन करनेके बाद ब्रह्मचारी ज्ञान, सत्कर्म, प्रजा और राजाके धर्म तथा परमात्माके स्वरूपका प्रचार करता हुआ अन्तमें वीर बनकर शत्रुओंका नाश करता है।

आचार्यस्ततक्ष नभसी उभे इमे उर्वी गम्भीरे पृथिवी दिवंच ।
ते रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तस्मिन्देवा संमनसो भवन्ति ॥

ये बड़े गम्भीर दोनों लोक पृथिवी और द्युलोक आचार्यने बनाये हैं। ब्रह्मचारी अपने तपसे उन दोनोंकी रक्षा करता है। इसलिए उस ब्रह्मचारीके अन्दर सब देवता अनुकूल मनसे रहते हैं।

अभिक्रन्दन् स्तनयन्नरुणः शितिंगो बृहच्छेपोऽनुभूमौजभार ।
ब्रह्मचारी सिंचति सानौ रेतः पृथिव्यां तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ॥

गर्जन करनेवाला भूरे और काले रंगसे युक्त बड़ा प्रभावशाली ब्रह्म अर्थात् उदक (जल) को साथ ले जानेवाला मेघ (बादल) भूमिका उचित रीतिसे पोषण करता है तथा पहाड़ और पृथिवीपर जलकी वृष्टि करता है, उससे चारों दिशायें जीवित रहती हैं।

ओषधयो भूतभव्यमहो रात्रे वनस्पतिः ।
संवत्सरः सहर्तुभिस्ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥
पार्थिवा दिव्या पशव आरण्या ग्राम्याश्चये ।
अपक्षा पक्षिणश्च ये ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥

औषधियाँ, वनस्पतियाँ ऋतुओंके साथ गमन करनेवाला सम्वत्सर, अहोरात्र, भूत और भविष्य ये सब ब्रह्मचारी हो गये हैं। पृथिवीपर उत्पन्न होनेवाले वन और गाँवमें उत्पन्न होनेवाले पक्षहीन पशु तथा आकाशमें भ्रमण करनेवाले पक्षी, सब ब्रह्मचारी बने हैं।

औषधि वनस्पतिमें ठीक मौसिममें ही फूल-फल लगते हैं, बिना मौसिमके नहीं। इसलिए उनमें ब्रह्मचर्य है। मेघ भी ब्रह्मचारी है, क्योंकि वह ऊर्ध्वरेता है यानी ऊपर जल धारण किये हुए है। तात्पर्य यह कि ऊर्ध्वरेता होनेके कारण मेघमें पृथिवीके पालन करनेकी शक्ति है, यदि वह ब्रह्मचारी न होता तो यह कार्य कदापि न कर सकता। सूर्य भी अपनी किरणोंसे जलको ऊपर खींचता है। मनुष्य भी प्राणके आकर्षणसे अपने वीर्यको ऊपर खींच सकता है। इस प्रकार मेघ और सूर्यके उदाहरणसे ब्रह्मचर्यका माहात्म्य वर्णन किया है। प्रायः सभी पशु-पक्षी भी ऋतुगामी होते हैं। वे अपनी स्त्रियोंसे गर्भाधानके लिए ही सम्भोग करते हैं।

इस प्रकारके वैदिक मंत्रोंसे यह सिद्ध होता है कि जब पशु-पक्षीतक इस नियमका पालन करते हैं कि बिना ऋतुकालके वे स्त्री-प्रसंग नहीं करते तथा मेघ और वनस्पतिमें भी वीर्यको ऊपर खींचनेकी शक्ति है, तब मनुष्यमें यदि ये बातें न हों तो महान् लज्जाकी बात है। मनुष्य सब प्राणियोंसे श्रेष्ठ है। उसे प्रकृति-नियमके विरुद्ध करना शोभा नहीं देता। अतः उसका कर्त्तव्य है कि वह भी वृक्ष-वनस्पतियोंकी भाँति वीर्यको प्राणद्वारा

ऊपर खींचकर ब्रह्माण्डमें स्थित करे, नीचे न आने दे और ऋतु-मती स्त्रीके साथ ही गर्भाधानके लिए सम्भोग करे और किसी समय भी न करे। यदि वह इसके विरुद्ध आचरण करेगा तो पतित समझा जायगा।

चारों वर्ण और आश्रम

गीतामें भगवान्‌ने कहा है:—

"चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण-कर्म विभागशः।"

—भगवद्‌गीता।

चारों वर्णोंकी रचना गुण और कर्मके अनुसार की गयी है।

ब्राह्मणके छः कर्म हैं—पढ़ना पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना, दान लेना। ये छः तो ब्राह्मणके कर्म हुए। अब ब्राह्मणमें किन-किन गुणोंका होना जरूरी है, सो सुनिये। मनकी शान्ति, इन्द्रियोंका दमन पवित्रता, क्षमा-शीलता, सरलता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता ये ब्राह्मणके स्वाभाविक गुण हैं।

क्षत्रियोंके ये कर्म हैं—पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना, प्रजा-रक्षण। इसी प्रकार शूरता, तेज, धैर्य, दक्षता, दान और आस्तिकता ये क्षत्रियोंमें स्वभावज होना चाहिये।

वैश्योंका कर्म है—पढ़ना, यज्ञ करना, व्यापार करना, दान देना। उदारता, व्यापार-कुशलता भक्ति-तत्परता और क्षमा-शीलता ये वैश्यके स्वाभाविक गुण हैं।

शूद्रोंका कर्म है, ऊपर कहे गये तीनों वर्णोंकी बड़े संयमके साथ हर तरहसे सेवा करना।

चारों वर्णोंको समान रूपसे ब्रह्मचर्यका पालन करके अपने-अपने धर्ममें प्रवृत्त होना चाहिये। बहुतसे लोग यह समझते हैं कि शूद्रोंको ब्रह्मचर्यका पालन और विद्याध्ययन करना उचित नहीं है। शास्त्रकारोंने निषेध किया है। किन्तु ऐसा समझनेवाले भूल करते हैं। वेद तो पशु-पक्षियोंके ब्रह्मचारी रहनेका वर्णन करता है। फिर मनुष्यको उससे क्योंकर वंचित रखा जा सकता है? दूसरी बात यह भी है कि बिना ब्रह्मचर्यके स्वास्थ्य ठीक नहीं रह सकता। जिसका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहेगा, वह अपनी जान सँभालेगा या दूसरेकी सेवा करेगा। रही शूद्रोंके विद्याध्ययनकी बात, सो ज्ञान प्राप्त करना प्रत्येक मनुष्यका धर्म है। ज्ञानके बिना मनुष्य अपने कर्त्तव्य-कर्मोंको कैसे जान सकेगा? इसलिए विद्याध्ययन करना भी शूद्रोंको उचित है और शास्त्र-विहित है।

उक्त चारों वर्णोंके लिए चार आश्रम हैं। उनके नाम हैं ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम और संन्यासाश्रम। उपनयन संस्कारके बाद बालकोंको गुरुकुलोंमें जाकर रहना चाहिये। ब्रह्मचर्याश्रममें बालक सादी चालसे कौपीन धारण करके विद्याध्ययन करता है, गुरुकी सेवा करता है और अपने आचरणोंका पालन करता है। इसकी अवधि कम-से-कम २५ वर्षकी अवस्थातक है। अधिक दिनोंतक ब्रह्मचर्यका पालन करे, तो और भी उत्तम। पर इससे कम नहीं होना चाहिये।

बाद वह ब्रह्मचारी गृहस्थाश्रममें प्रवेश करता है। इस दूसरे आश्रममें उसे सन्तानोत्पत्ति, द्रव्योपार्जन और लोकसेवा तथा अतिथि-अभ्यागतोंकी सेवा करनी चाहिये। इसका समय २५ वर्षसे ५० वर्षतक है।

फिर गृहस्थाश्रमसे वान-प्रस्थाश्रममें प्रवेश करना चाहिये। मनुमहाराजने लिखा है:—

गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वली पलितमात्मनः।
अपत्यस्यैवचापत्यं तदारण्यंसमाश्रयेत॥

अर्थात् जब गृहस्थ अपने शरीरको बलहीन होता देखे और घरमें पुत्र-पौत्र हो जायँ, तब वनमें प्रवेश करे। इसकी अवधि ५० वर्षसे ७५ वर्षतक है। इस आश्रमके मुख्य कर्त्तव्य ये हैं:—

१—वनमें कुटी बनाकर शान्तिके साथ जीवन व्यतीत करे, सांसारिक आडम्बरोंको त्याग दे, निर्मोह होजाय और प्रकृतिके सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्वोंका गम्भीरता और बारीकीके साथ निरीक्षण करे।

२—संसारके कल्याणार्थ विद्यार्थियोंको विद्या-दान दे। किन्तु उनसे कभी कुछ माँगे नहीं।

३—संसारके छोटे-से-छोटे जीवधारीको भी प्रेमकी दृष्टिसे देखे और "अहिंसा परमोधर्मः" का पालन करे।

४—कन्द-मूल-फलादिसे अपनी क्षुधाका निवारण कर लिया करे और सदा स्वर्गीय आनन्दमें विचरण करे।

५—नाना प्रकारकी विद्याओंका आविष्कार करे। सदा अपनी आत्माकी उन्नतिकी ओर ध्यान रखे।

६—गृहस्थोंको उचित शिक्षा दे। इन्द्रियोंपर अधिकार करनेके लिए योगाभ्यास करे और परमात्माकी ओर मन लगावे।

उसके बाद संन्यासाश्रममें प्रवेश करे। यह अन्तिम आश्रम है। इसकी अवधि ७५ वर्षके बाद जीवन-पर्यन्त है। इसमें पहले कहे गये तीनों आश्रमोंके कर्मोंका त्याग हो जाता है। इस आश्रमके प्रधान कर्तव्य ये हैं:—

१—आहार कम कर देना तथा किसी स्थानपर एक रात्रिसे अधिक निवास न करना अर्थात् भ्रमण करते रहना। अपने पवित्र और उच्च-विचारोंसे संसारका हित करना और दोषोंको दूर करना।

२—काम-क्रोध-लोभादिसे मुक्त रहकर आचरण शुद्धि-द्वारा मनपर विजय प्राप्त करना।

३—इच्छा-रहित होकर हर जगह निर्भीकता-पूर्वक रहना और सत्यका पालन करते रहना।

४—सुख-दुःखको समान समझना, प्राणिमात्रको समदृष्टिसे देखना यानी किसीको अधिक और किसीको कम न मानना, संसार भरको कुटुम्बके समान समझना, अपने और परायेका भाव दिलसे निकाल देना।

५—योगाभ्यासद्वारा आत्मस्वरूपका ठीक-ठीक अनुभव करके सत्-चित्-आनन्द-स्वरूपमें मिल जाना—जीवन-मरणसे मुक्त हो जाना—अक्षय कीर्त्ति छोड़ जाना आदि।

इस प्रकार चारों वर्णों और चारों आश्रमोंकी व्यवस्था है। संन्यासधर्म बड़ा ही कठिन है। इसमें उसी मनुष्यको प्रवेश करना चाहिये जो अपनी इन्द्रियोंको वश कर ले। किन्तु आजकल तो इस आश्रमको लोगोंने खेलवाड़ समझ रखा है। जहाँ घरमें किसीके साथ झगड़ा हुआ या स्त्रीने कुछ कहा अथवा व्यापारमें घाटा लगा कि कितने ही लोग घर छोड़कर संन्यास ग्रहण कर लेते हैं। वे समझते हैं कि गेरुआ वस्त्र पहनकर सबके घर बढ़िया माल उड़ाना ही सन्यासाश्रमका धर्म है। ऐसे लोगोंसे हमारे देश-की बहुत बड़ी हानि हो रही है। कुछ लोगोंके मनमें क्षणिक वैराग्य उत्पन्न होता है और वे यह समझकर भी संन्यास ग्रहण कर लेते हैं कि गृहस्थीमें बहुतसी बाधायें हैं, बड़ी हाय-हाय करनी पड़ती है—संन्यास ग्रहण कर लेना सबसे अच्छा है; क्योंकि उसमें किसी बातकी चिन्ता नहीं रहेगी और मनको शान्त कर-नेका पूरा अवकाश मिलेगा। किन्तु ऐसी धारणा भी बिलकुल मूर्खतासे भरी हुई है। जो मनुष्य अपने घरमें रहकर कुछ नहीं कर सकता, वह बाहर जाकर क्या करेगा ? जो मनुष्य गृहस्थ-धर्मका पालन नहीं कर सकता, उससे संन्यासके कठिन नियमोंका पालन क्योंकर हो सकता है ? ऐसे लोग संन्यास ग्रहण करके जीवनको बर्बाद कर डालते हैं। कारण यह कि उनका हृदय तो तमाम दोषोंसे भरा ही रहता है, मोह-ममता बनी ही रहती है, शुद्ध विराग तो उत्पन्न हुआ नहीं रहता, इसलिए वे संन्यास ग्रहण करके रूखी रोटीके लिए दुखी होते हैं और एकान्तमें बैठकर

उसकी चिन्ता करते हैं तो कभी पुत्रके लालन-पालन और तोतली बोलीकी याद करके बिलखते हैं। बतलाइये तो सही, फिर संन्यास कहाँ रहा? ऐसे लोगोंकी क्या गति होती है, ईश्वर ही जाने। इसलिए हर मनुष्यको कोई काम करनेसे पहले अच्छी तरहसे सोच लेना चाहिये और यह देखना चाहिये कि अमुक काम करनेके अधिकारी हम हैं, अथवा नहीं। क्योंकि अनधिकार चेष्टा करना मूर्खता है।

उपनयन और विद्याभ्यास

उपनयन-संस्कार हो जाने यानी यज्ञोपवीत धारण कर लेनेके बाद ब्रह्मचारीको विद्या पढ़नेके लिए गुरुकुलमें जाना उचित है। यहींसे ब्रह्मचर्याश्रम प्रारम्भ होता है। प्राचीन कालमें इस संस्कार के बाद बच्चे गुरुकुलोंमें भेज दिये जाते थे। स्मृति-ग्रंथोंने केवल द्विजाति मात्रको (द्विजातिमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीन जातियाँ हैं) यज्ञोपवीतका अधिकारी माना है, शूद्रोंको नहीं। यज्ञोपवीत धारण करनेका समय-विधान इस प्रकार है:—

गर्भाष्टमाब्देऽकुर्वीत ब्राह्मस्योपनायनम्।
गर्भादेकादशोराज्ञो गर्भास्तु द्वादशेविशः॥

—मनुस्मृति

यानी 'गर्भसे आठवें वर्षमें ब्राह्मणका, ग्यारहवेंमें क्षत्रियका और बारहवेंमें वैश्यका उपनयन करना चाहिये।' ब्रह्मवर्चस्की

इच्छासे ब्राह्मणका पाँचवें वर्षमें, बलकी इच्छासे क्षत्रियका छठेमें और धनकी इच्छासे वैश्यका आठवेंमें उपनयन करनेका भी विधान है। इसी प्रकार सोलह वर्षके बाद ब्राह्मणोंको, बाईसके बाद क्षत्रियोंको और चौबीसके बाद वैश्योंको गायत्री-मंत्रका उपदेश देनेका अधिकार नहीं है अर्थात् अधिकसे अधिक इस अवस्था तक यज्ञोपवीत-संस्कार अवश्य हो जाना चाहिये।

यज्ञोपवीतके समय योग्य आचार्य बालकको दीक्षित करता है। किन्तु दुःखकी बात है कि समयके फेरसे वह महत्त्वपूर्ण प्रणाली नष्ट हो गयी, आज लल्लू-बुद्धू आचार्य-पदपर बिठा दिये जाते हैं। यदि उपनयन-संस्कारकी विधियोंपर दृष्टि डाली जाय तो पता चलता है कि उसमें कितने उत्तम रहस्य भरे हुए हैं। अग्निकी उत्तर दिशामें पूर्वाभिमुख होकर आचार्य बैठता है और अपनी अंजलिमें जल लेकर सविता (गायत्री) मंत्रसे बूँद-बूँदकर शिष्यकी अंजलिमें टपकाता है। इसका अभिप्राय यह है कि इसी प्रकार क्रमशः हम अपनी सारी विद्यायें तुम्हें पढ़ावेंगे।

इस प्रकार प्राचीन समयमें यज्ञोपवीतके समय अभिमंत्रित होकर बच्चे गुरुकुलोंमें जाते थे और विद्याध्ययन करते थे। उस समय स्थल-स्थलपर गुरुकुल थे। प्रायः सब गुरुकुल ऐसे ही स्थानों-पर थे, जहाँकी जल-वायुमें किसी प्रकारका विकार नहीं होता था। ये प्रायः वनोंमें पार्वतीय भूमिपर होते थे। ब्रह्मचर्य और गृहस्थाश्रमको लाँघकर वान-प्रस्थाश्रममें रहनेवाले लोग ही अध्या-

पक होते थे। इसलिए बच्चोंपर उत्तम संस्कार पड़ता था और वे नाना प्रकारकी विद्याये सीखकर विद्वान्, धर्मात्मा, तेजस्वी और सदाचारी होते थे। बाद गृहस्थाश्रममें प्रवेश करके नियमित ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए गृह-कार्य करते थे।

किन्तु आज हमारे देशकी वह प्रणाली नहीं रही। न तो वैसे विद्वान्, सदाचारी और निस्वार्थी आचार्य ही हैं और न वैसे गुरुकुल ही। हमारे देशके आचार्योंमें इस समय आचार-भ्रष्टता कूट-कूटकर भर गयी है। अतः बच्चे भी विद्याध्ययन-कालमें ही दुराचारी हो जाते हैं। उनका उचित रीति से ब्रह्मचर्य-पालन नहीं होता। घरवाले भी थोड़ी ही अवस्थामें विवाह कर देते हैं। परिणाम यह होता है कि उनका सारा जीवन चौपट हो जाता है। इसीसे आजकलके छात्र स्कूल या कालेजसे निकलते ही नौकरी ढूँढ़ने लगते हैं, गुलामीके सिवा उन्हें कुछ सुझाई ही नहीं पड़ता। हम मानते हैं कि आजकलकी शिक्षा-प्रणाली भी बड़ी भद्दी है। महात्मा गान्धीके शब्दोंमें यों कहना चाहिये कि आजकलके शिक्षालयोंको तो शिक्षालय कहना ही उचित नहीं है; ये तो गुलाम तैयार करनेके कारखाने हैं। बात बहुत ही यथार्थ है। यदि लड़कोंको उचित शिक्षा मिले और वे स्वावलम्बी बनाये जायँ, तो उनकी यह दशा कदापि न हो। पर उसके साथ ही यह भी बात है कि यदि अध्यापकगण सदाचारी हों और लड़कोंको ब्रह्मचर्यकी पूरी शिक्षा दे सकें तो बल-वीर्यके प्रतापसे हमारे छात्रगण इतने निरुत्साही और अकर्मण्य कदापि नहीं हो सकते।

इसलिए देशमें फिर प्राचीन समयकी तरह गुरुकुलोंके खुलने तथा सदाचारी और विद्वान् अध्यापकोंकी आवश्यकता है। हर्षकी बात है कि स्व० स्वामी श्रद्धानन्दजीके प्रयत्नसे कई छोटे-मोटे गुरुकुलोंकी स्थापना हुई है, पर वह अभी नहीं के बराबर ही कहा जा सकता है। क्योंकि अभी उनमें न तो वैसे योग्य अध्यापक ही हैं और न वैसी शिक्षण-प्रणाली ही है। सुतरां देशवासियोंको इधर विशेष रूपसे ध्यान देना चाहिये। ऐसा प्रबन्ध किये बिना बालकोंका ब्रह्मचारी और विद्वान् होना असम्भव है।

व्यायाम

वीर्यकी रक्षाके लिए कसरत बड़ी ही उपयोगी चीज है। इसलिए ब्रह्मचारीके लिए व्यायाम करना आवश्यक है। व्यायामकी प्रणाली बिगड़ जानेसे भी ब्रह्मचर्य-पालन करनेकी प्रथापर बहुत बड़ा आघात पहुँचा है। प्राचीन समयमें गाँव-गाँव और मुहल्ले-मुहल्लेमें व्यायाम-शालाएँ होती थीं, सब लोगोंको इस वीरता-पूर्ण कार्यसे शौक था, यही कारण है कि लोग हट्टे-कट्टे साहसी, पुष्ट और सदाचारी होते थे किन्तु आजकल तो हमारे जीवनका लक्ष्य ही कुछ और हो गया है। विलासिताकी मात्रा अधिक बढ़ जानेके कारण कितने ही युवक शरीरमें मिट्टी लगते सेनरह घबड़ाते हैं। वे यह नहीं जानते कि मिट्टीमें कितने गुण भरे हुए हैं। इसमें इतनी संजीवनी शक्ति है कि सर्पका विष भी

यह आसानीसे चाट जाती है। ऐसी उपादेय वस्तुको घृणाकी दृष्टिसे देखना मूर्खता नहीं तो क्या है? पर यह तभी हो सकता है, जब व्यसन छूटे, तेल-फुलेलसे चेहरा चिकनानेकी बान जाती रहे।

आयुर्वेदका मत है कि व्यायाम करनेसे शरीर सुडौल होता है। अंगकी थकावटसे व्यर्थकी काम-चेष्टा नष्ट हो जाती है। नींद खूब आती है, और मन स्थिर रहता है। अग्नि तीव्र होती है, आलस्य दूर हो जाता है, जल्द सर्दी या गर्मी असर नहीं कर पाती। व्यायामसे सुन्दरता भी बढ़ जाती है, चेहरेपर कान्ति आ जाती है। व्यायाम करनेवालेको अजीर्ण, दस्त या कब्जकी शिकायत नहीं रहती। कहाँ तक कहा जाय, इसमें बहुतसे गुण हैं।

किन्तु व्यायामकी मात्रापर ध्यान रखना चाहिये। बहुतसे लोग व्यायाम इतना बढ़ा देते हैं कि देखकर बुरा मालूम होता है। यह अच्छा नहीं है। अत्यधिक व्यायाम करनेसे बहुत तरहके रोग उत्पन्न होनेकी सम्भावना रहती है। अधिक व्यायामसे श्वास, कास, क्षय, वात, अरुचि, भ्रम, आलस्य, ज्वरादि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिए आधा बल रखकर व्यायाम करना चाहिये। जब माथे पर पसीना आ जाय तथा साँस जोर-जोरसे चलने लगे, तब व्यायाम बन्द कर देना उचित है। प्रारम्भमें थोड़ा व्यायाम करना चाहिये। फिर क्रमशः बढ़ाना चाहिये। संसार-प्रसिद्ध प्रोफेसर राममूर्त्तिने नीचे लिखे उपदेश लिखे हैं:—

१—व्यायामका अभ्यास धीरे-धीरे करना चाहिये, एकदम बढ़ा देना ठीक नहीं है।

२—जो व्यायाम किया जाय, वह बहुत धीरे-धीरे अंगों पर पूरा जोर डालकर करना चाहिये। जल्दी-जल्दी व्यायाम करनेसे कोई लाभ नहीं।

३—व्यायामको प्राणायामके साथ मिलाकर करना चाहिये। श्वास-प्रश्वासकी क्रिया नाकसे ही करनी चाहिये, मुखसे करना अत्यन्त हानिकारक है। केवल व्यायामहीके समय नहीं बल्कि हर समय। इस प्रकारसे साँस छोड़ो और बाहर रोको तथा धीरे-धीरे बाहर उसे खूब रोको। सीनेमें साँस भरकर फिर व्यायाम करो। ऐसा करनेसे सीना चौड़ा हो जाता है। यथार्थतः बल वायुमें है। वायुको वशमें करनेसे मनुष्य बलवान हो सकता है। इसलिए प्राणायामके साथ व्यायाम करनेका अभ्यास करना चाहिये।

४—व्यायाम करते समय मनको स्थिर रखना चाहिये और मनमें यह समझना चाहिये कि इस क्रियासे हम बराबर बलवान हो रहे हैं। हम भीम तथा हनूमानके समान बलवान हो जायँगे। इनके चित्रोंको सामने रखना उत्तम है।

५—व्यायाम कर चुकनेके बाद पाँच-सात मिनट तक धीरे-धीरे टहलना उचित है। उसके बाद ठंढाई पीनी चाहिये। ठंढाई—बादाम १०, धनिया १ माशा, काली मिर्च ५ दाने, इलायची छोटी २—इन सब चीजोंको शामके वक्त थोड़ेसे जलमें भिगोकर रख देना चाहिये। व्यायामके बाद ठंढाई तैयार करके ऊपरसे थोड़ी-सी मिश्री मिलाकर पीना चाहिये। इस ठंढाईसे कसरतके बाद होनेवाली मुर्छा दूर हो जाती है। सर्दीके दिनोंमें ऊपर

लिखी हुई चीजोंमें थोड़ी सोंठ मिला लेनी चाहिये। धीरे-धीरे दो-दो बढ़ाने चाहिये और एक सेर तक बढ़ा देने चाहिये। उसी हिसाबसे अन्य चीजें भी बढ़ा लेनी चाहिये।

६—व्यायाम करनेवालोंको माँस नहीं खाना चाहिये। क्योंकि इससे सुस्ती, क्रूरता तथा अनेक दुर्गुणोंकी वृद्धि होती है। सात्विक भोजन करना ही व्यायायमें लाभदायक है।

अब ऊपरके नियमोंको पढ़कर पाठकगण व्यायामका रहस्य समझ सकते हैं। कारण यह कि ऊपरकी बातें उस महापुरुषकी बतलायी हुई हैं जो कलियुगका भीम समझा जाता है और वास्तवमें है भी। अतः ब्रह्मचारियोंको ऊपरकी बातोंसे पूरा लाभ उठाना चाहिये। इस प्रकार प्रत्येक ब्रह्मचारीको व्यायामकी ओर भी झुकना चाहिये। व्यायामके बहुतसे भेद हैं। जैसे—तैरना, दण्ड-बैठक करना, जोड़ी फेरना, दौड़ना, कुश्ती लड़ना, टहलना आदि। ऊपर जो व्यायामके सम्बन्धमें लिखा गया है, वह दण्ड-बैठकके सम्बन्धमें नियम है। किन्तु ब्रह्मचारीको कमसे कम दो-चार तरहका थोड़ा-थोड़ा व्यायाम अवश्य करना चाहिये।

छठा प्रकरण

स्त्री-ब्रह्मचर्य

कुछ लोगोंका कथन है कि कन्याओंके लिए शास्त्रमें ब्रह्मचर्य धारण करके विद्याध्ययन करनेकी आज्ञा नहीं दी गयी है। स्त्रियोंको वेद नहीं पढ़ना चाहिये, क्योंकि वे शूद्रा हैं। पर यह उनकी भूल है। क्योंकि स्त्री-पुरुष दोनों ही मनुष्य हैं। एक ही सत्तासे दोनोंकी उत्पत्ति है और दोनों उसीके प्रतिरूप हैं। इसपर यह प्रश्न किया जा सकता है कि एक ही सत्ताके रूप होते हुए भी क्रिया और धर्म-भेदसे उनमें भेद-भाव कहाँ से आ गया? दोनों भिन्न-भिन्न कैसे हो गये? यद्यपि स्त्री और पुरुषकी शिक्षा और साधनाका एक ही उद्देश्य है और वह है मनुष्यत्वका उद्बोधन तथा उसकी सार्थकता; पर एक ही उद्देश्य होते हुए भी दोनोंका गन्तव्य मार्ग एक नहीं है। संसारकी एकता जिस तरह सत्य है, उसकी विचित्रता या अनेकता भी उसी तरह सत्य है बल्कि यों कह सकते हैं कि इस संसारकी विचित्रताने ही संसारको संसार कहलानेके योग्य बनाया है। पार्थक्य और विशेषतामें ही विश्वका रहस्य है और इसीमें उसकी सार्थकता भी है। इस-

लोग कभी-कभी विश्वको एक मान लेते हैं; किन्तु उसमें हमारा अभिप्राय एकताकी प्राप्ति नहीं रहती बल्कि हमें उसमें कामकी सुविधा दिखानी पड़ती है। पर इससे न तो सत्यकी रक्षा ही होती है और न सृष्टिके गूढ़ उद्देश्योंकी सिद्धि ही। इसीलिए हमारे हृदयमें यह प्रश्न उठता है कि पुरुष और स्त्रीकी विशेषता कहाँ है। मनुष्य सत्ताका कौन भाव और कौन अंग पुरुष है तथा कौन भाव और कौन अंग स्त्री है?

वास्तवमें मनुष्य-सत्ताके दो भाग हैं, ज्ञान और शक्ति। मनुष्य पहले तो जाननेकी चेष्टा करता है, फिर कहनेकी चेष्टा करता है। जाननेकी चेष्टा ज्ञान है और कहना शक्ति है। एक सत्ता और भी है, जिसे हम प्रेम कहते हैं। यही प्रेम दोनोंका आश्रय-स्थान है। दोनों इसी प्रेमके सहारे चलते हैं। ज्ञानका प्रकाश मन या बुद्धि-द्वारा होता है और इसका केन्द्र मस्तिष्क है तथा शक्तिका प्रकाश प्राणोंमें होता है। इससे सिद्ध होता है कि पुरुष ज्ञान है और स्त्री शक्ति है।

संसारके जीवनकी सामग्रियोंपर स्त्रीका जितना अधिकार है, पुरुषका उतना नहीं। ज्ञान-बुद्धिद्वारा वस्तुओंका ज्ञान भले ही कर लिया जाय, पर उसके प्रयोगके लिए शक्तिकी आवश्यकता है। इस काममें नारीकी योग्यता सबसे बढ़कर है। वस्तुओंके सजानेमें नारीकी योग्यता सबसे बढ़कर होती है। देखनेमें मालूम होता है कि वस्तुओंके साथ उसका अद्भुत प्रेम है। उसके हाथमें पड़ते ही वस्तुओंकी सजावट इस तरह हो जाती है, मानो किसीने जादू

कर दिया हो। किन्तु पुरुष इतना कर सकता है कि वस्तुका निरीक्षण करके सोच-समझकर उनकी रचना तथा सजावटका ढंग बना सकता है, पर स्त्रीकी भाँति उसे कार्यरूपमें परिणत नहीं कर सकता। यदि करनेकी चेष्टा भी करता है तो उसको पूरा करनेमें उसे अपना सारा बल लगाना पड़ता है। यही कारण है कि पुरुष-शरीरकी रचना भिन्न ढंगसे हुई है अर्थात् मोटी हड्डी, स्थूल माँस और कड़ा शरीर। पर नारी इन सबसे कम नहीं, वह किसी भी वस्तुका संचालन शारीरिक बलद्वारा नहीं करना चाहती। शारीरिक बल-प्रयोगमें एक तरहका बनावटीपन है—कर्त्ता और करणका द्वन्द्व और द्वैतभाव है। पुरुषके मस्तिष्कने उसकी प्राण-शक्तिको निष्प्रयोजनीय बनाकर उसे वस्तुसे अलग कर दिया है, पर स्त्रीकी शक्तिने उसको वस्तुमें बाँधकर रखा है। यही कारण है कि स्त्री अपनी स्वाभाविक चातुरीद्वारा जिन वस्तुओंका संचालन करती है उसीका संचालन पुरुषको बलद्वारा करना पड़ता है। इस स्थूल-संसारसे संग्राम करनेके लिए नैपोलियनको स्कूलमें व्यायाम आदि द्वारा अपनी ताकत बढ़ानी पड़ी थी, पर आर्ककी देवी जोन को इस तरहकी कोई भी बात नहीं करनी पड़ी थी।

पुरुषके शरीरमें ताकत भले ही अधिक हो, पर स्त्रीकी शक्ति उससे बलवती होती है। पुरुष-शरीरमें बलकी बहुलता होती है और स्त्री-शरीरमें शक्तिकी अनवरत धारा बहती रहती है। यही कारण है कि स्त्रीको बाहरी बलका सहारा लेनेकी जरूरत नहीं

पड़ती। पुरुषमें चञ्चलता अधिक होती है और स्त्रीमें धीरता और स्थिरता अधिक होती है। पुरुष जो कुछ कहता है, वह जबानसे कहता है, पर स्त्री जो कुछ कहती है, हृदयसे कहती है।

समाज, स्त्रीको केन्द्र बनाकर प्रतिष्ठा करता है। इसलिए इस विश्वके दो भाग हैं। पर इसका यह मतलब नहीं कि 'दोनों दो ओर, एक दूसरेसे बिल्कुल भिन्न होकर रहते हैं। पुरुष और स्त्री ये दोनों भाग वैसे ही हैं जैसे किसी गोल वस्तुको बीचसे काटकर किये हुए दो भाग होते हैं। कुछ लोगोंकी धारणा है कि समाजमें केवल एक स्थानपर आकर पुरुष और स्त्रीका साधारण संयोग होता है, नहीं तो वे हर तरहसे एक दूसरेसे अलग हैं। इसी धारणाका फल है कि पुरुष और स्त्रीके बीच एक विचित्र विषमता उत्पन्न हो गयी है और लोग यह कहने लग गये हैं कि स्त्रीको वेद पढ़ने, ब्रह्मचर्य धारण करनेका अधिकार नहीं है। लिखा है:—

"ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्"

—अथर्ववेद।

अर्थात् ब्रह्मचर्यका पालन करनेके बाद कन्या अपने योग्य युवक पतिको प्राप्त करती है।

यदि हम अपनी बुद्धिसे विचार करते हैं, तब भी यही बात उचित जँचती है कि पुरुष-स्त्रीको ईश्वरकी ओरसे समान अधिकार है। दूसरी बात यह भी है कि स्त्री-समाज पर ही पुरुष जातिकी उन्नति और अवनति निर्भर है। क्योंकि जन्म देनेवाली

स्त्रियाँ ही हैं। शास्त्रकारोंका वचन है कि—"नास्ति मातृ समो· गुरुः" अर्थात् माताके समान गुरु संसारमें कोई नहीं है। जितनी शिक्षा बालक मातासे ग्रहण करता और कर सकता है, उतनी और किसीसे भी नहीं। इसलिए माताका शिक्षिता होना बहुत जरूरी है। अतः जब तक कन्याओंको शिक्षा नहीं दी जायगी, तबतक वे माता होनेपर अपने बालकोंको कैसे शिक्षा दे सकती हैं?

इससे यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कन्याओंको ब्रह्मचारिणी रहकर विद्याभ्यास करना चाहिये। इसके लिए वेदकी भी आज्ञा है और विचार-दृष्टिसे देखनेपर भी इसीकी सिद्धि होती है। स्त्रियोंकी शिक्षाके बिना देशकी उन्नति होना असम्भव है।

अब यह देखना चाहिये कि स्त्रयोंकी शिक्षाका काल क्या है, और वह किस ढङ्गकी होनी चाहिये। स्त्रीके शरीरमें साधारण तया ११-१२ वर्षकी अवस्थामें रजकी उत्पत्ति होती है और वह रज १६ वर्षकी अवस्था में परिपक्व हो जाता है। इसलिए रजके उत्पन्न होनेके समयसे लेकर परिपक्व होनेके समय तक उन्हें ब्रह्मचारिणी रहकर विद्या पढ़नी चाहिये। बाद योग्य पतिके साथ विवाह करके गृहस्थाश्रममें प्रवेश करना चाहिये और पति-द्वारा विद्या पढ़नी चाहिये।

कुछ लोग कहेंगे कि विद्याध्ययनके लिए यह काल तो बहुत ही कम है, स्त्रियोंको पुरुषोंके इतना समय क्यों नहीं दिया गया? यह विषमता क्यों? इसका कारण यह है कि स्त्रियोंकी बुद्धि पुरुषोंकी अपेक्षा बहुत ही प्रखर होती है। उनका प्रत्येक काम

पुरुषोंको अपेक्षा शीघ्र होता है। देखिये न, पुरुषका वीर्य २५ वर्षकी अवस्थामें परिपक्व होता है और युवावस्था पुष्ट होती है, किन्तु स्त्रियोंका रज १६ वर्षकी अवस्थामें परिपक्व हो जाता है और वे गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेके योग्य हो जाती हैं। इसीसे १६ वर्षकी कन्याके लिए कमसे कम २५ वर्षका ब्रह्मचारी वर होना चाहिये, ऐसा शास्त्रकारोंका आदेश है। क्योंकि १६ वर्षकी कन्याका रज उतना ही पुष्ट होता है, जितना कि २५ वर्षकी अवस्थावाले पुरुषका वीर्य। इससे यह साबित होता है कि यह प्राकृतिक वृद्धि स्त्रियोंमें है। अतएव वे अल्प समयमें ही बहुत पढ़-लिख सकती हैं। दूसरी बात एक यह भी है कि उनके विद्याध्ययनका काल यहीं तो समाप्त हो नहीं जाता, वे पतिदेवके पास भी तो पढ़-लिख सकती हैं। जिन लोगोंको कन्या-पाठशालाओंके निरीक्षणका सौभाग्य प्राप्त हुआ होगा, वे लोग इस बातको अच्छी तरहसे जानते होंगे कि कन्यायें कितनी कुशाग्र बुद्धिकी होती हैं; अतः इसपर विशेष कुछ लिखना व्यर्थ है।

काम-शमनके उपाय

यह कामदेव रूपी शत्रु बड़ा ही बलवान है। इस पर विजय पाना साधारण काम नहीं। जो मनुष्य एक बार इसके फेरमें पड़ जाता है या एक बार इसका स्वाद मालूम हो जाता है, उसे सैकड़ों

उपदेशोंसे भी नहीं समझाया जा सकता। शाक-पात खाकर रहने-वाले बड़े-बड़े ऋषि-महर्षियोंको भी इसके चक्करमें आ जाना पड़ा था। इसलिए इस शत्रु पर विजय पानेके लिए सबसे सरल उपाय तो यह है कि शरीरमें इसकी उत्पत्ति ही न होने दे। तात्पर्य यह है कि इस पुस्तकमें बतलाये गये नियमोंपर चलकर काम-देवको शान्त रखे। मनको विषयोंकी ओर कभी न ले जाय, ऐसा करनेसे इसका कोई वश नहीं चल सकता। इसपर भी यदि यह अपना प्रभाव दिखावे और उन्मत्त बनाकर अनर्थ कराना चाहे तो मनुष्यको नीचे लिखे उपायोंसे इसे शान्त करना उचित है:—

१—ऐसे समयमें मनुष्यको थोड़ा व्यायाम करना चाहिये। दौड़ना चाहिये, किसी अच्छे आदमीके पास बैठकर उपदेशप्रद बातोंमें मन लगाना चाहिये।

२—थोड़ासा ठंढा पानी पी लेना चाहिये और मनमें किसी उत्तम बातका स्मरण करना चाहिये।

३—शरीरमें उत्तेजना होनेपर फौरन ठंढे पानीसे स्नान कर लेना चाहिये। इससे भी कामका वेग ढीला पड़ जाता है।

४—उत्तम ग्रन्थका पाठ करनेमें लग जाना भी वृत्तिको शान्त कर देता है और मनुष्यका वीर्य-नाश नहीं होता।

५—अपने किसी मृत स्नेहीका स्मरण करके मनके वेगको रोक देना चाहिये।

ऐसे ही और भी बहुतसे प्रयत्न हैं, जिनके द्वारा मनुष्यकी इस प्रबल शत्रुसे रक्षा हो सकती है। इसलिए ऐसे उपायों-द्वारा

मनुष्यको बचना चाहिये। हर समय वीर्यकी रक्षा करनेका दृढ़ संकल्प करके ईश्वर-चिन्तन करते रहना चाहिये। जो मनुष्य अपने मनको ढीला छोड़ देता है, उसे इच्छापूर्वक विचरने देता है, वह धोखा खाता है।
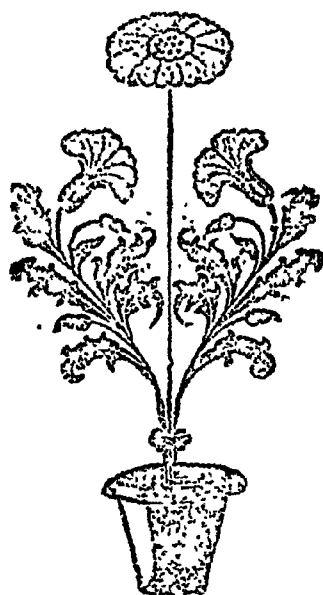
सातवाँ प्रकरण

गृहस्थाश्रममें प्रवेश

उक्त रीतिसे ब्रह्मचर्यका पालन करके मनुष्यको गृहस्थाश्रममें प्रवेश करना उचित है। किन्तु गृहस्थीमें रहकर भी मनुष्यको ब्रह्मचर्यका पूरा पालन करते रहना चाहिये। गृहस्थीमें रहकर ब्रह्मचर्यका पालन किस प्रकारसे किया जाता है, यह इस प्रकरणमें अच्छी तरहसे बतला दिया जायगा।

बात यह है कि जो मनुष्य गृहस्थीमें रहकर भी अपनी इन्द्रियोंके वशमें नहीं रहता, सब कामोंपर ध्यान देता है, साहसके साथ सब काम करता है, अपने मान और मर्यादाकी ओर सदा ध्यान रखता है, बुद्धिको सुन्दर विचारोंमें लगा रखता है, किसीका अहित नहीं करता, दया और प्रेमको अपना भूषण बनाये रहता है, धर्मकी ओर प्रवृत्ति रखता है, वही सच्चा और उत्तम गृहस्थ है, वही गृहस्थीमें रहकर ब्रह्मचर्यका पालन कर सकता है। किन्तु जो गृहस्थ इसके विपरीत आचरण करता है, वह नष्ट हो जाता है। बुद्धिको सदा विषयोंसे दूर रखना ही उत्तम है।

गृहस्थीमें रहकर मनुष्यको चाहियेकि वह स्त्री-प्रसंग केवल सन्तानोत्पत्तिकी इच्छासे करे और वह उस समय करे जबकि रजोदर्शन होनेके बाद स्त्री शुद्ध हो जाय। इसके अतिरिक्त और कभी भी स्त्री-सम्भोग करना उचित नहीं। इस प्रकार नियमके साथ रहनेसे गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी मनुष्यको बहुत ही कम वीर्य-नाश करना पड़ता है। क्योंकि संयमी पुरुषके एक बार वीर्य-दानसे ही स्त्री गर्भ धरण कर लेती है। गर्भ-स्थित हो जाने के बाद वीर्य-दानकी कोई जरूरत नहीं रह जाती और फिर उस समयतक नहीं रहती, जबतक कि बच्चा पैदा होकर पाँच वर्षका नहीं हो जाता। इस प्रकार किसी संयमी मनुष्यको अधिक सन्तान उत्पन्न करनेके लिए भी जीवन-भरमें ५-७ बारसे अधिक वीर्य निकालनेकी जरूरत नहीं पड़ सकती।

किन्तु इस रीतिसे निर्वाह करना साधारण काम नहीं है। आजकलके नवयुवक तो प्रतिदिन १-२ बार वीर्यनाश कर दिया करते हैं। ऐसी दशामें उन्हें उचित है कि उनसे ऊपरके नियमका पालन न हो सके, तो वे हर महीनेमें रजोदर्शनके बाद स्त्रीसहवास कर सकते हैं, किन्तु उन्हें भी इस बातका अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि गर्भाधानके बाद स्त्री-प्रसङ्ग करना बन्द कर दें और बच्चा पैदा होनेके बाद कम-से-कम दो वर्षतक तो अवश्य ही स्थगित रखना चाहिये। यद्यपि यह उत्तम रीति नहीं है। गृहस्थ-जीवनको हम पाँच श्रेणीमें विभक्त कर सकते हैं।

उत्तम गृहस्थ तो वह है जो केवल एकबार स्त्रीको वीर्यदान

देकर एक सन्तान उत्पन्न कर लेता है और फिर आजन्म वीर्यका नाश नहीं करता।

मध्यम गृहस्थ वह है जो गर्भस्थित होनेके बाद स्त्री-सहवास त्याग देता है और जबतक बच्चा पैदा होकर पाँच वर्षका नहीं हो जाता, तबतक स्त्री-सहवास नहीं करता। बाद दूसरा गर्भ-स्थित करता है।

तीसरी श्रेणीका गृहस्थ वह है जो प्रतिमास स्त्री-सहवास करता, पर दो-तीन मासका गर्भ होते ही उससे दूर हो जाता है और बच्चोंकी दो वर्षकी अवस्था होनेतक संयमसे रहता है।

चौथी श्रेणीका गृहस्थ वह है जो प्रतिदिन अथवा दूसरे तीसरे दिन वीर्यका नाश किया करता है और किसी बातका संयम नहीं रखता। हाँ, परायी स्त्रीको बुरी निगाहसे नहीं देखता।

पाँचवीं श्रेणीका गृहस्थ वह है जो चौथी श्रेणीके गृहस्थकी भाँति वीर्यका नाश करता है और पर-स्त्री-गामी भी होता है।

इन पाँचों प्रकारके गृहस्थोंमें पहलेके तीन तो अच्छे हैं पर अन्तिम दो अत्यन्त नीच और पापी हैं। इसमें पाँचवाँ तो नीचसे भी नीच है। ये दोनों ही व्यभिचारी हैं। ब्रह्मचारी गृहस्थ इन्हें कदापि नहीं कहा जा सकता। उत्तम ब्रह्मचर्यका पालन करना बस ऊपरके दो ही गृहस्थोंमें पाया जाता है यानी एक उत्तममें और दूसरे मध्यममें।

ब्रह्मचारीको यह याद रहे कि विवाह असामयिक मैथुनद्वारा इन्द्रिय-सुखके लिए नहीं है, बल्कि केवल सन्तानोत्पत्तिके लिए है।

शास्त्रकारोंने कहा है कि दम्पति-नियमसे रहनेवाले गृहस्थ भी ब्रह्मचारी ही हैं। विवाह मानवी सृष्टि चलानेके लिए एक धार्मिक कर्तव्य है। इसका विधिवत् पालन करने से गृहस्थाश्रम सुख-शान्तिका देनेवाला होता है। मनु महाराजने लिखा है:—

"ब्रह्मचार्येव भवति यत्रतत्राश्रमे वसन्।"

अर्थात् ऋतुकालकी वर्जित रात्रियोंको छोड़कर स्त्री-सहवास करनेवाला पुरुष चाहे जिस आश्रममें हो—ब्रह्मचारी ही है।

इससे सिद्ध होता है कि गृहस्थाश्रममें रहकर भी ब्रह्मचर्यका पालन किया जा सकता है और प्रत्येक मनुष्यको इसका पालन करना चाहिये। किन्तु आज हमारी वृत्ति ऐसी बिगड़ गयी है कि ये सब भाव ही हमारे दिलमें नहीं उठते और न हम इधर ध्यान ही देते हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि लोग रात-दिन विषयमें ग्रस्त रहते हैं किन्तु गर्भाधान नहीं होता। यदि होता भी है तो रज-वीर्यकी निर्बलताके कारण गर्भपात हो जाता है। और यदि गर्भपात नहीं होता, किसी तरहसे सन्तान उत्पन्न ही हो जाती है तो वह अल्पायु, रोगी, निर्बल और बुद्धिहीन होती है। इसलिए सौमें ९० आदमी बच्चेके लिये शोकातुर देखनेमें आते हैं।

अतः सब लोगोंको ब्रह्मचर्यका पालन करके उचित रीतिसे गृहस्थीमें रहते हुए अमोघ-वीर्य बनना उचित है।

अमोघ-वीर्य

अमोघ-वीर्य उसे कहते हैं जिसका वीर्य कभी भी विफल न न हो, गर्भाधान अवश्य हो जाय। अमोघ-वीर्य होनेके लिए विशेष कुछ नहीं करना पड़ता। वीर्यकी रक्षा करनेसे ब्रह्मचारीको यह सिद्धि अपने आप ही हो जाती है। जो मनुष्य २५ वर्षकी अवस्थातक वीर्यकी रक्षा नहीं करता और वीर्यकी अपरिपक्वावस्थामें ही वीर्यका नाश करने लगकर उसे परिपक्व नहीं होने देता, वही अमोघ-वीर्य नहीं होता। किन्तु जो मनुष्य उक्त अवस्थातक वीर्यकी पूरी रक्षा करता है और बाद भी उसका अधिक अपव्यय नहीं करता, वह अमोघ-वीर्य हो जाता है और आजन्म बना रहता है। इसलिए प्रत्येक मनुष्यको अमोघ-वीर्य बनना चाहिये।

ऊर्ध्वरेता

बहुतसे ब्रह्मचारी ऊर्ध्वरेता हो जाते हैं। ऊर्ध्वरेता उसे कहते हैं जिसका वीर्य नीचे न उतरे और मस्तिष्कमें जाकर जमा हो। बहुत ही कम लोग ऊर्ध्वरेता हुआ करते हैं। कारण यह कि वीर्य जलरूप है और जलका बहाव साधारणतया नीचेकी ओर होनेके कारण वीर्य भी नीचेकी ओर ही बहता है। परन्तु जब वीर्य

नीचेकी ओर न आकर स्वाभाविक रीतिसे ऊपर जाने लगे तब मनुष्य ऊर्ध्वरेता कहा जाता है। इसमें मनुष्यको कुछ साधना करनेकी जरूरत पड़ती है। बिना साधनाके इसकी सिद्धि नहीं होती। हाँ, कभी-कभी अपने आप भी यह सिद्ध हो जाता है, पर बहुत देरमें। और यदि किसी प्रकारसे इसके सिद्ध हुए बिना ही वीर्य नष्ट हो जाता है, तब तो इसकी सिद्धि असम्भव-सी हो जाती है। इसलिए यही कहना उचित है कि बिना साधनाके इसकी सिद्धि नहीं होती।

उपवास

अजीर्णसे शरीरमें अनेक रोग होते हैं। अजीर्णका नाश करनेके उपाय औषध सेवन नहीं है बल्कि उपवास करना ही है। क्योंकि औषधियोंके सेवन करनेसे वीर्यमें दोष पैदा हो जाता है और उपवास करनेसे वीर्य-दोषकी न्यूनता होती है। उपवाससे शरीर तो शुद्ध होता ही है, मन भी शुद्ध हो जाता है। लिखा भी है

'आहारान् पचतिशिखी दोषान् आहार वर्जितः।'

अर्थात् अग्निसे आहार पचता है और उपवाससे दोष पचते हैं। हमारे धर्म-ग्रंथोंमें उपवासका बहुत बड़ा महत्त्व लिखा हुआ है। यहाँ तककि उसे धार्मिक कृतियोंमें स्थान देकर 'व्रत' के नामसे प्रचलित किया गया है। उपवाससे शरीर और मन दोनोंकी उन्नति है। उपवास करना, आत्मिक उन्नतिके लिए अत्यन्त उपयोगी है।

किन्तु उपवास या व्रत करनेका यह अर्थ नहीं है कि उपवास करनेसे एक दिन पहले खूब डाटकर भोजन किया जाय और उपवासके दिन अन्न तो न खाय लेकिन फलहारी चीजें—जैसे, सिघाड़ेका हलुआ और पूड़ी, दूध, मलाई, रबड़ी, आदि खूब उड़ाई जायँ। इस प्रकारके उपवाससे तो उपवासका न करना ही अच्छा है। उपवास करनेका यह मतलब है कि उसके एक दिन पहले केवल एक वक्त भोजन करे और यदि क्षुधा अधिक मालूम हो तो शामको भी भोजन कर ले, पर बहुत हल्का। फिर उपवासके दिन कुछ न खाय, आवश्यकता पड़नेपर एकाधबार सिर्फ पानी-भर पी ले। ऐसा करनेसे कोष्ठ शुद्धि हो जाती है और जठराग्नि भी प्रज्वलित हो जाती है। बाद पारणाके दिन हलका भोजन करे।

इस प्रकारके उपवाससे मनुष्यकी आत्मिक शक्ति बहुत बढ़ जाती है, अतः ब्रह्मचर्यके लिए उपवास अत्यन्त उपयोगी है; क्योंकि उससे इन्द्रियोंकी अनुचित प्रबलता नष्ट हो जाती है और मनमें स्वाभाविक ही पवित्रता आ जाती है। इसी उद्देश्यसे हमारे धर्म-ग्रंथोंमें प्रत्येक महीनेमें एकादशीके दो व्रत लिखे गये हैं। जो लोग बहुत ही कोमल प्रकृतिके हों, वे पानीके अतिरिक्त दूध अथवा थोड़ा उत्तम फल भी उपवासमें खा सकते हैं।

उपवासके दिन मनुष्यको चाहियेकि वह चारों ओरसे अपने मनको खींचकर आत्मचिन्तनकी ओर लगावे, धार्मिक विषयोंकी चर्चा करे, उत्तम ग्रंथोंका पाठ करे तथा साधु-महात्माओंके पास

बैठकर उपदेश ग्रहण करे। उस दिन नाटक, सिनेमा, ताश, शतरंज आदिमें अपने समयको भूलकर भी न गँवावे।

खड़ाऊँ

ब्रह्मचारीके लिए खड़ाऊँ पहनना बहुत ही लाभदायक है। इससे काम-वासनाओंका बहुत कुछ शमन होता है। बात यह है कि पैरमें अँगूठेके ऊपरी भागकी नससे और लिंगेन्द्रियसे बड़ा-भारी लगाव है इसलिए खड़ाऊँके उपयोगसे ज्यों-ज्यों वह नस दबती है, त्यों-त्यों काम-वासना भी दबती जाती है। दूसरी बात एक यह भी है कि खड़ाऊँ पहननेसे पैर हरवक्त खुली हवामें रहते हैं, इससे तन्दुरुस्ती ठीक रहती है। यों तो मनुष्य अपने रोम-रोमसे शुद्ध वायु को खींचता और भीतरकी दूषित वायुको बाहर निकालता है, पर नाकके बाद पैरका और मस्तिष्क स्थान इस क्रियामें सबसे ऊँचा है। यही कारण है कि उसे पैरके द्वारा गर्मी-सर्दी बहुत जल्द असर पहुँचाती है। बहुधा देखनेमें आता है कि सर्दी होनेपर पैरके तलवेमें ही तेलकी मालिश करायी जाती है और वह समूचे शरीरमें अपना असर पहुँचाकर सीतको हर लेती है। इससे साबित होता है कि पैरोंका खुली हवामें रखना तथा उनकी स्वच्छतापर विशेष ध्यान देना स्वास्थ्यके लिए बहुत ही आवश्यक है। इसलिए खड़ाऊँका पहनना बहुत उत्तम है।

किन्तु खड़ाऊँका अच्छा होना जरूरी है। उसका अच्छापन

या बुरापन उसकी खूँटियोंपर निर्भर है। जो लोग खड़ाऊँकी बाहरी चमक-दमकसे उसके अच्छे-बुरेपनका निर्णय करते हैं, वे भूल करते हैं। खड़ाऊँ सादा हो या नकाशीदार, इससे कोई मतलब नहीं। सिर्फ यही देखना चाहियेकि खड़ाऊँमें खूब हलकापन हो तथा उसकी खूँटियाँ ऐसी बनी हों कि गड़ें न और सुलकर प्रतीत हों। खड़ाऊँ पहननेसे वीर्यकी रक्षा तो होती ही है, इससे ज्योति भी बढ़ती है। इसलिए ब्रह्मचारीको इससे लाभ उठाना चाहिये।

लँगोट बाँधना

ब्रह्मचर्यमें लँगोट बाँधना बड़े फायदेका है। इससे कामकी उद्विग्नता नष्ट होती है, मनमें वीरताका भाव पैदा होता है। अंडकोष बढ़नेकी सम्भावना बहुत कम रह जाती है। किन्तु दोहरके पतले या मोटे कपड़ेका लँगोट वीर्यकी रक्षा करनेके लिए उपयुक्त नहीं। क्योंकि ऐसे लँगोटसे गर्मी पैदा होनेके कारण वीर्यका नाश हो जाता है। बहुतसे लोग यह समझते हैं कि लँगोट पहननेसे इन्द्रिय निबल हो जाती है; किन्तु ऐसा समझना, भूल है। इससे इन्द्रिय निबल नहीं पड़ती बल्कि संयमसे रहनेके कारण बहुत सबल हो जाती है। हाँ इतना अवश्य होता है कि उसकी अस्वाभाविक नाशकारी उत्तेजनाका नाश हो जाता है।

लँगोट सदा मुलायम और पतले कपड़ेका एकहरा पहनना

उचित है। चौवीसों घण्टा एकदम कसकर नहीं बल्कि, कुछ ढीला रखना लाभदायक है। लँगोटको प्रति दिन खूब अच्छी तरहसे मलकर धोना चाहिये और धूपमें सुखाना चाहिये। ४-६ दिनपर साबुनसे साफ कर देना और भी उत्तम है। अभिप्राय यह कि इसकी सफाईकी ओर विशेष ध्यान रखना चाहिये। काछके वस्त्रोंमें बहुत जल्द बदबू होने लगती है।

सूर्य-ताप

प्रतिदिन सवेरे घण्टेभर या कुछ कम धूपमें सूर्यकी ओर मुख करके शान्तिके साथ बैठना चाहिये। उस समय अपने मनमें ऐसी धारणा रखनी चाहिये कि मुझमें सूर्य भगवान् शक्तिका संचार कर रहे हैं। प्रातःकालीन सूर्यकी ओर मुख करके यदि हो सके तो दृष्टि भी सूर्यदेवके बिम्बपर स्थित करनी चाहिये और मनःशक्तिके द्वारा शक्तिको खींचकर अपने शरीरमें भरनेका उद्योग करना चाहिये। यदि दृष्टि स्थित न रह सके तो आँखें बन्द करके आसन लगाकर बैठना चाहिये। यह यौगिक क्रिया है। योगी लोग अपने मनोबलसे संसारमें शक्ति भरनेवाले भगवान भुवन-भास्करसे शक्ति लेते हैं। इसलिए ब्रह्मचारीको भी इस क्रियासे अवश्य लाभ उठाना चाहिये।

सूर्यताप-सेवनसे हर तरहके रोगोंकी शान्ति होती है। इसीसे अच्छे चिकित्सक लोग रोगियोंको प्रकाश-पूर्ण कमरेमें रखनेके

लिए परामर्श देते हैं। कारण यह कि प्रकाश-पूर्ण कमरेमें सूर्यकी किरणें आती हैं, जहाँ सूर्यकी किरणें न आवेंगी, वहाँ प्रकाश रही नहीं सकता। अतएव रोगीका रोग दूर करनेमें उन किरणों-द्वारा अप्रत्यक्ष रूपसे बहुत बड़ी सहायता मिलती है। जो लोग इसका अनुभव करना चाहें वे इस क्रियाको करके देख सकते हैं। देखिये न, शहरोंमें बड़ी बड़ी अट्टालिकाओंके कारण काफी प्रकाश नहीं आता, इसलिए शहरके रहनेवाले पीले पड़ जाते हैं और रोगी भी हो जाते हैं—सो भी बहुत कुछ प्रकाश उन्हें मिलता है, यदि न मिले तो जीना ही असम्भव हो जाय; किन्तु धूपमें काम करनेवाले देहाती हट्टे-कट्टे और नीरोग होते हैं। सूर्यकी किरणों-द्वारा ही अन्न और फलोंमें रस पैदा होता है और वे पकते हैं; सूर्यकी किरणोंसे ही पौदे बड़े होकर खड़े रहते हैं। जब पौदोंको सूर्यकी किरणोंसे इतनी शक्ति मिलती है, तब मनुष्यको क्योंकर शक्ति नहीं मिलेगी?

सूर्य-ताप-सेवन करते समय बदनको खुला रखना आवश्यक है। इससे जीवनी शक्ति बढ़ती है, रोग दूर होते हैं, मानसिक शक्तिकी वृद्धि होती है, शरीर बलवान होता है, वीर्य पुष्ट होता है, कान्ति बढ़ जाती है, चेहरा तेजमान हो जाता है, चित्तमें प्रसन्नता आती है और विचारोंमें पवित्रता तथा उच्चता आ जाती है।

प्राणायाम

मनुष्यमात्रके लिए प्राणायाम करना बहुत जरूरी है। किन्तु आजकल नाना प्रकारके दुष्ट व्यसनोंके कारण लोगोंके शरीर ऐसे शक्तिहीन हो गये हैं कि वे कुम्भकके साथ थोड़ासा भी प्राणायाम नहीं कर सकते। कुम्भक प्राणायाम करनेसे बहुतसे लोग अनेक तरहकी शिकायतें करते रहते हैं, पर वास्तवमें इसका दोष प्राणायामपर लगाना उचित नहीं है। यह दोष प्राणायाम करनेवालोंके वीर्यनाश करनेका है। इसपर स्वाध्याय मण्डलसे प्रकाशित 'आसन' नामकी पुस्तकमें लेखकने लिखा है कि, "दस-पन्द्रह वर्षोंके सूक्ष्म निरीक्षणसे जो बातें मालूम हुई हैं, उनका सारांश लिखता हूँ। प्राणायाम करनेवाले अपनी पूरी तैयारी करके ही प्राणायामका अभ्यास शुरू करें।

जो स्वयं जन्मसे मांसाहारी हैं और विशेषतः जिनके बाप-दादा भी मांसाहारी अर्थात् अधिक मांसाहारी रहे हैं, उनको कुम्भक प्राणायामसे विविध प्रकारके कष्ट होते हैं। छातीमें, पसलियोंमें दर्द होता है, पेटमें गड़बड़ी उत्पन्न होती है, सिरमें नाना-प्रकारके विकार उत्पन्न हो जाते हैं। विशेषतः श्वास-दमा आदिका प्रकोप होता है। इसका कारण यह है कि मांसाहारी कुलमें जन्म होनेके कारण अथवा अपने शरीरके सब परमाणु मांस भोजनके कारण खून, मज्जातन्तु तथा फेफड़ोंमें विशेषतः और सब शरीरमें साधारणतः प्राणशक्तिके धारण करनेका बल ही नहीं रहता है।

प्राणशक्तिका बल सबसे अधिक है, अतः जब उसको स्वाधीन करनेका यत्न किया जाता है, तब वह शक्ति क्षुब्ध होकर प्रतिबन्धको तोड़ना चाहती है। मांसभोजी लोग मसाले आदि उत्तेजक पदार्थ बहुत खाते हैं, इसलिए उनके शरीरके परमाणुओंमें प्राण धारक शक्ति कम होती है। मांसके साथ मद्यका सेवन करनेवालोंमें और जिनमें आनुवंशिक यानी पुश्तैनी मद्य पान शुरू है, उनमें तो बहुत ही हीन अवस्थामें प्राणधारक शक्ति रहती है। ऐसे लोग जिस समय अपने प्राणको रोकना चाहते हैं, उस समय वह उसको ही ताड़ना देता है और शरीरका जो भाग कमजोर रहता है, उसीमें बिगाड़ होने लगता है। अतएव ऐसे लोगोंको प्रारम्भमें उत्तम पथ्य करना चाहिये और पश्चात् प्राणायाम शुरू करना उचित है।

मांस भोजनसे यद्यपि शरीर बड़ा पुष्ट होता है तथापि सौमें छत्तीस ऐसी बीमारियोंकी स्वभावतः सम्भावना उनके शरीरमें रहती है, कि जो रोग फलभोजियोंको कभी होते ही नहीं। इसलिए दौड़ना, तैरना, अथवा दीर्घ कालतक कोई कार्य करना, जिसमें कि प्राणशक्तिकी स्थिरताकी आवश्यकता रहती है. ऐसे कामोंमें मांसभोजी लोग हमेशा-फलभोजियोंके पीछे रहते हैं। यही कारण है कि ऐसे लोगोंसे कुम्भक नहीं होता और बलपूर्वक करनेसे हानि पहुँचाता है।

गाँजा, भाँग, अफीम, चरस आदि भयंकर व्यसनोंमें लिप्त रहनेवालोंके लिए कुम्भक प्रायः अशक्य ही है। तमाखू खाने-

पीनेवालोंके शरीरमें रक्त-दोष बहुत होता है, तथा तमाखूका व्यसन जन्मभर करनेवालोंकी सन्ततिमें खूनकी बीमारी, मज्जा-तन्तुओंकी कमजोरी और हृदयकी निर्बलता जन्मसे ही रहती है। यही कारण है कि इनलोगोंसे कुम्भक प्राणायाम नहीं होता तथा बलपूर्वक करनेसे हृदयकी कमजोरी बढ़ जानेकी सम्भावना होती है। न्यूनाधिक व्यसनके कारण न्यूनाधिक परिणाम भी होता है। यदि माता-पिता बहुत बलवान हुए तो उनका व्यसनोंका बुरा परिणाम उतना नहीं होता, जितना कि कमजोर मनुष्योंपर। तमाखू पीनेवालेके शरीरपर तो कम असर होता है, पर उसके वीर्यमें बहुत खराबी पैदा हो जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि, उनकी सन्तानें जन्मसे ही वीर्य-दोष-युक्त और कमजोर-हृदय होती हैं।

इसलिए प्राणायामका अभ्यास शुरू करनेवालोंको सबसे पहले पथ्य द्वारा अपनी हीन परिस्थितिका सुधार करना चाहिये। पथ्य यह है,—१—मांस खाना छोड़ देना चाहिये। २—चटपटी तथा मसालेदार चीजोंको कम करते-करते एकदम त्याग देना चाहिये। ३—सात्त्विक भोजन करना तथा फलोंका अधिक सेवन करना चाहिये। ४—गायका दूध पीना चाहिये; क्योंकि गायके दूधमें प्राणधारक शक्ति अधिक होती है। ५—रहन-सहनमें सादगी लानी चाहिये। इस प्रकार न्यूनाधिक दोषोंके अनुसार एक वर्षसे तीन वर्ष तक पथ्य करके शरीरका सुधार करना उचित है। बाद नीचे लिखे 'समवृत्ति प्राणायाम'का अभ्यास शुरू करना चाहिये।

'समवृत्ति प्राणायाम' वह होता है जिसमें आन्तरिक और

बाह्य कुम्भक नहीं होता। समगतिसे तथा मन्द वेगसे श्वास और उच्छ्वास चलते रहते हैं। पहले श्वासकी गतिको मन्द करना चाहिये, बाद श्वास-प्रच्छ्वासको समान करना चाहिये श्वासोच्छ्वासकी समानता गिनतीसे अथवा ओंकारके जपसे की जा सकती है अर्थात् यदि दस तक गिन्ती पूरी होनेपर आप श्वास खींचें तो दस तक गिनती पूरी होने तक आप प्रच्छ्वास भी करें। इसमें किसी प्रकार भी प्राणशक्तिपर बलका दबाव न डालकर बिलकुल आसानीसे करना उचित है। इस प्रकार दो सप्ताह करनेके बाद एक अंककी संख्या बढ़ानी चाहिये। क्रमशः पन्द्रहके बाद एक अंककी संख्या बढ़ाते हुए बलाबलके अनुसार २० या २४ की संख्या तक बढ़ाया जा सकता है।

श्वासोच्छ्वासकी गति इतनी मन्द रहे कि आवाज जरा भी न हो। उच्छ्वासके समय पेटको बिलकुल खाली कर देना चाहिये। श्वास लेनेके समय पहले फेफड़ोंके नीचेका भाग जो कि पेटके पास होता है, भरना चाहिये और बाद क्रमशः ऊपरके भागोंमें भरना चाहिये। श्वास भरते समय अथवा उछ्वास करते समय किसी प्रकारका धक्का नहीं लगना चाहिये।

दमा और श्वासके रोगी तथा कमजोर फेफड़ेवाले यदि अपनी शक्तिके अनुसार गर्मीके दिनोंमें इस प्राणायामको शुरू करें तो वे रोगमुक्त हो सकते हैं। यदि किसी प्रकारकी बीमारीमें इस प्राणायामका प्रारम्भ करना हो तो गर्म हवामें करना उचित है। ठण्डी हवामें करना अच्छा नहीं है।

इस प्रकारसे प्राणायामका अभ्यास प्रत्येक मनुष्यको करके अपने प्राणायामका बल बढ़ाना चाहिये। खासकर ब्रह्मचारीको तो अवश्य ही इसका अभ्यास करना चाहिये। प्राणायामसे वीर्यकी रक्षा करनेमें जितनी सहायता मिलती है, उतनी और किसी भी चीजसे नहीं मिलती। मनु महाराजने लिखा है:—

दह्यन्तेध्मायमानानाम् धातूनां च यथा मला।
तथेन्द्रियाणामदह्यन्ते दोषा: प्राणस्य निग्रहात्॥

अर्थात् जिस प्रकार स्वर्ण आदि धातुओंका मल अग्निमें तपानेसे जल जाता है, उसी प्रकार इन्द्रियोंके दोष प्राणायामसे दग्ध हो जाते हैं।

प्राणायामसे फेफड़ोंमें शक्ति बढ़ती है जिससे रुधिर अधिक मात्रामें शुद्ध होता है अतएव शरीर अधिक आरोग्य और बलवान बन जाता है। प्राण ही महाशक्ति है। इसके जीतनेसे सब कुछ जीता जा सकता है। इसके द्वारा मनुष्य बड़े-बड़े पराक्रमके काम कर सकता है। प्राणायामके ही प्रभावसे प्रोफेसर राममूर्त्तिने लोहेकी सीकड़ तोड़कर, मोटर रोककर तथा मनुष्योंसे लदी गाड़ीको छाती पर चढ़ाकर संसारको चकित कर दिया था। बरोदाके बाल ब्रह्मचारी प्रो० माणिकरामजी ब्रह्मचर्य और प्राणायामके प्रतापसे ही व्यायामशाला खोलकर नवयुवकोंको अनेक तरहकी योग, मल्ल तथा शस्त्रादि विद्याओंकी शिक्षा बड़े उत्साह और योग्यताके साथ देकर भारतवर्षमें पथ-प्रदर्शक हो रहे हैं।

प्रत्येक विद्यार्थीको प्रो० माणिकरावजीका अनुकरण करके गाँव-गाँवमें व्यायामशालाएँ खोल कर लोगोंमें खूब प्रचार करना चाहिये और देशके नवयुवकोंको खूब दृढ़ ब्रह्मचारी तथा साहसी बनाना चाहिये।

आसन

यों तो आसन बहुत तरह के होते हैं और प्राय: सभी उपयोगी हैं, पर दो आसन ब्रह्मचारियों के लिए विशेष लाभदायक हैं। आसनोंके अभ्याससे शरीर हृष्ट-पुष्ट होता है और शीघ्र कोई रोग नहीं होता। शरीर में कोमलता, लचीलापन तथा चिकनाहट आती है। दस्त भी खूब साफ होता है। पेटकी सारी शिकायतें दूर हो जाती हैं। कभी उपवास करनेकी जरूरत नहीं पड़ती; कारण यह कि भोजन अच्छी तरहसे हजम होता जाता है और ठिकानेसे भूख लगती है। उत्पन्न हुए धातु-विकार भी एकदम नष्ट हो जाते हैं। इसलिए प्रत्येक ब्रह्मचारीको और नियमोंके साथ ही कमसे कम दो आसनोंका अभ्यास तो अवश्य ही करना चाहिये। क्योंकि ये वीर्य-रक्षाके लिए बहुत ही लाभदायक हैं।

शीर्षासन

इसका दूसरा नाम कपाली आसन भी है। इसमें नीचे सिर और ऊपर पैर किये जाते हैं। नये अभ्यासीको पहले दीवारके

सहारे करना चाहिये। दीवारके पास चार-छः अंगुल मोटा गद्दा बिछा देना चाहिये। बाद उसी गद्दे पर सिर रखकर दीवारके सहारे दोनों पैरोंको ऊपर उठाना चाहिये। शरीर बिलकुल सीधा रहे। इस प्रकार पहले आधे मिनट तक ठहरना उचित है। आठ-दस दिनके बाद एक मिनट फिर दो मिनट, महीने भर बाद पाँच मिनटका अभ्यास कर देना चाहिये। इसी प्रकार क्रमशः बढ़ा कर आध घण्टेका अभ्यास करना चाहिये। इससे अधिक अभ्यास बढ़ानेकी जरूरत नहीं।

आसनोंका अभ्यास खुली जगहमें या हवादार कमरेमें करना अधिक लाभदायक है। इसके अलावा अभ्यासके समय पेट भी खूब हलका रहना चाहिये। इसलिए प्रातःकाल शौचादिसे निवृत्त होकर बिना कुछ खाये यदि ब्रह्मचारी लोग आसनका अभ्यास करें, तो विशेष उत्तम हो। वास्तवमें अभ्यास करनेका यही समय भी है। भोजनके बाद तो भूल कर भी अभ्यास नहीं करना चाहिये। क्योंकि ऐसा करनेसे स्वास्थ्य बिगड़नेकी सम्भावना रहती है।

अधिक अभ्यास हो जाने पर दीवारके सहारे रहनेकी जरूरत नहीं पड़ती। अनुमानतः एक महीनेमें अभ्यासी निराधार खड़ा होने लग जाता है। इस आसनके अभ्याससे सैकड़ों तरहके रोग तो दूर हो ही जाते हैं, साथ ही वीर्यका प्रभाव भी ऊपरको हो जाता है; अतः दिमागी ताकत बहुत बढ़ जाती है। कोई भी मनुष्य महीने भरके अभ्याससे इस आसनका गुण बहुत कुछ जान सकता है। सिर-दर्द आदिके लिए तो यह आसन जादूका-

सा काम करता है। यदि सिरमें पीड़ा होती हो, तो शीर्षासन करो; फौरन ही सिरकी पीड़ा हवा हो जायगी। यह अनुभूत बात है।

शीर्षासनसे भूख बढ़ जाती है। इसलिए शीर्षासन करने-वालेको घी-दूधका अधिक सेवन करना चाहिये। नहीं तो पेट अग्नि से जलने लगता है। शीर्षासन करनेके घण्टे भर बाद बड़ी ही मजेदार भूख लगती है।

इससे स्वप्नदोषका होना बहुत जल्द रुक जाता है और कुछ दिनोंके बाद तो वीर्य, शरीरमें ही खपने लग जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि समूचा शरीर ही वज्रके समान दृढ़ हो जाता है। नेत्रोंकी ज्योति भी बढ़ जाती है। नींद भी बड़ी अच्छी आने लगती है। शीर्षासन करने के बाद ही शरीरमें ऐसे आराम और शान्तिका अनुभव होता है कि तबीयत प्रसन्न हो जाती है।

शीर्षासनसे प्राणकी गति स्थिर और शान्त होने लगती है। अपने आप ही प्राणायाम होने लगता है। इस समय प्राणायाम करनेकी स्वयं चेष्टा कदापि न करनी चाहिये। शीर्षासन करनेके बाद अपनी इच्छा के अनुसार प्राणायाम करना चाहिये। यह आसन करते समय केवल मनको स्थिर और शान्त रखनेका प्रयत्न करना चाहिये और कुछ भी नहीं। शीर्षासनके बाद स्वयं साँस रोकनेकी इच्छा होती है और विना किसी प्रकारके कष्टके श्वास देरतक रुकने लगता है। शीर्षासनसे रक्तकी शुद्धि भी हो जाती है; क्योंकि समूचे शरीरका रुधिर मलोंको लेकर फेफड़े में पहुँ-चता है और रक्तकी शुद्धि फेफड़ेमें ही होती है।

कुछ अभ्यासियोंका तो यहाँतक कहना है कि केवल शीर्षासन तथा उसके साथ और बादके प्राणायामसे भी अभ्यासी समाधि तक आसानी से पहुँच सकता है। कई योगाभ्यासियोंका कथन है कि प्रतिदिन तीन घंटा शीर्षासन या कपाली मुद्राके अभ्याससे सब कुछ सिद्ध हो जाता है। इसका कारण यही है कि शीर्षासनसे प्राण अन्दर खिचने लगता है। इसलिए ब्रह्मचारी या गृहस्थ-ब्रह्मचारी सबको इस आसनका अभ्यास नियम-पूर्वक अवश्य करना चाहिये। किन्तु इनको इतना अधिक अभ्यास बढ़ानेकी जरूरत नहीं है; केवल आधा घंटा प्रतिदिन करना ही यथेष्ट है। यह आसन बहुतसे रोगोंपर तुरन्त ही अपना गुण दिखला देता है। अभ्यास करनेसे तथा रोगियोंपर आजमानेसे सब अनुभव अपने-आप ही हो जायगा, अधिक लिखनेकी कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

इस आसनसे इतना लाभ क्यों होता है, यह भी सुनिये। जब हम एक ही अंगपर अधिक देरतक सोते अथवा बैठते हैं, तब वहाँसे उठने के समय हम स्वभावतः विरुद्ध दिशासे शरीरको खींचते हैं और उस खिंचावमें सुखका अनुभव करते हैं। यह बात पशुओंमें भी पायी जाती है। एक ही अंगपर अधिक देरतक रहने से जो जो खून वहाँ जम जाता है, उसे फाड़नेके लिए या हटानेके लिए खिंचाव की आवश्यकता पड़ती है। तात्पर्य यह कि विरुद्ध खिंचाव से शरीर में समता आती है और समत्व प्राप्त करना ही योग है। चूँकि शीर्षासन में रुधिरका विरुद्ध खिंचाव

होता है ; अतः उससे बहुत बड़ा लाभ होता है। इसका अभ्यास १० वर्ष के बच्चे से लेकर वृद्धतकको करना चाहिये। सबको लाभ हो सकता है। स्त्रियाँ भी इसका अभ्यास करके लाभ उठा सकती हैं ; केवल गर्भिणी स्त्रीको इसका अभ्यास नहीं करना चाहिये।

किन्तु आसनों का अभ्यास करनेवालेको इस पुस्तक में बतलाये हुए नियमों के अनुसार ब्रह्मचर्यका पालन करना बहुत ही आवश्यक है। कारण यह कि सब साधनाओंकी जड़ ब्रह्मचर्य ही है। व्यभिचारी मनुष्यका किया कुछ भी नहीं हो सकता।

सिद्धासन

इसमें बायें पैरकी एँड़ीको अण्डके नीचे और दाहिने पैरकी एँड़ीको मूत्रेन्द्रियके ऊपर स्थापित करके बैठा जाता है। सिद्धासनमें कमर और मेरुदण्ड को बिलकुल सीधा रखना चाहिये। झुका रहना हानिकारक है। गर्दनका पिछला भाग भी मेरुदण्डके सीधमें ही रहना आवश्यक है। इस प्रकार शान्त चित्त से प्रतिदिन बैठकर या तो प्राणायाम करना चाहिये और या चुपचाप बैठकर ईश्वरके स्वरूपका चिन्तन करना चाहिये। सिद्धासनसे बैठनेका अभ्यास भी पेटको शुद्ध करके ही करना उचित है। इस आसनका प्रभाव वीर्यपर खूब पड़ता है। जो मनुष्य प्रति दिन घण्टे-दो घण्टेका अभ्यास करता है उसकी काम-विकारसे रक्षा होती है। वीर्य भी स्थिर हो जाता है।

यद्यपि मन बहुत ही चंचल है; इसका रोकना बड़ा ही कठिन काम है; किन्तु सिद्धासनसे मन बहुत जल्द स्थिर हो जाता है। इस आसनका अभ्यास भी धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिये। एकसाथ ही अधिक देरतक इस आसनसे रहना बड़ा हानिकारक है। इस आसनसे बैठकर यदि मनुष्य कुछ भी न करे. केवल शान्त रहनेका प्रयत्न किया करे, तब भी बहुत लाभ होता है। आजन्म ब्रह्मचारीको कम-से-कम तीन घण्टेका अभ्यास प्रति दिन करना चाहिये। किन्तु जो लोग गृहस्थ ब्रह्मचारी हों. उन्हें एक घण्टेसे अधिक अभ्यास नहीं करना चाहिये।

सबसे पहले इस आसनसे केवल बैठनेका अभ्यास करना उचित है। शरीरके किसी भी अंगको न हिलाते हुए जितनी देर तक बैठनेका अभ्यास हो जाता है, उतना ही मन एकाग्र करनेके लिए अधिक सहायता मिलती है। एक घण्टेके अभ्याससे थोड़ी देर तक मनके व्यापारोंको रोका जा सकता है और मनकी स्थिरतासे आत्मशक्तिके विकासका आनन्द मिलने लग जाता है। यह अभ्यास बिलकुल एकान्त स्थानमें करना उचित है। शोर-गुल होनेसे मनकी स्थिरता भंग हो जाती है।

अभ्यासी मनुष्यको सात्त्विक भोजन तथा अन्य पथ्यों पर पूरा ध्यान रखना चाहिये। भूख अधिक लगने पर गायका दूध पीना लाभदायक है। स्त्रियोंके लिए यह आसन करना उचित नहीं है।

वक्तृत्व-कला

ब्रह्मचारीको भाषण देनेका भी अभ्यास करना चाहिये। जिस प्रकार संसारमें अन्यान्य विद्याओंके अभ्यासकी आवश्यकता होती है, उसी प्रकार भाषण देना सीखनेकी भी आवश्यकता है। यह विद्या ब्रह्मचारियोंमें जरूर होनी चाहिये। कारण यह कि जितना प्रभाव जनतापर व्याख्यानोंका पड़ता है उतना और चीजका नहीं। किन्तु जितना असर एक ब्रह्मचारी व्याख्याताका पड़ सकता है, उतना असर दूसरे किसी भी व्याख्याताका नहीं। इसलिए ब्रह्मचारीको इस विद्यामें अवश्य निपुण होना चाहिये। कारण यह कि उसके द्वारा देश तथा जातिका अधिक कल्याण हो सकता है।

वक्तृत्व-कलामें इतनी बातों पर ध्यान रखना आवश्यक है। पहली बात तो यह है कि जो कुछ कहना हो, उसे थोड़े शब्दोंमें ऐसी सरल भाषामें कहे कि सुननेवालोंकी समझमें आ जाय। दूसरी बात यह कि ध्वनिमें माधुर्य गुण अवश्य रहे ताकि लोगोंके दिलमें ऊब न पैदा हो। तीसरी बात यह है कि शब्द-योजना और भाव व्यक्त करनेकी युक्ति ऐसी रहे कि श्रोताओं पर उनका अच्छा प्रभाव पड़े, वे उससे शिक्षा ग्रहण कर सकें तथा उनके दिलोंमें व्याख्यानमें कही हुई सारी बातें अच्छी तरहसे बैठ जायें। चौथी बात यह है कि विषयका चुनाव अच्छा होना चाहिये और सुधारके या शिक्षाके जो मार्ग बतलाये जायँ, वे सरल और सुख-साध्य

हों। चौथी बात यह है कि व्याख्याता जो कुछ कहे, यानी जो कुछ दूसरोंको उपदेश दे, उसके अनुकूल अपना भी आचरण रखे। क्योंकि यदि कोई व्याख्याता स्वयं तो गाँजा-भाँग आदि मादक वस्तुओंका सेवन करता हो और दूसरोंको अपने भाषणमें इन वस्तुओंके त्यागनेका उपदेश दे, तो उसके कथनका कुछ भी प्रभाव जनतापर नहीं पड़ सकता—बल्कि लोग हँसी उड़ाते हैं। इसलिए व्याख्याताको पहले अपना आचरण ठीक करके पीछे उपदेश देना चाहिये—ताकि किसीको दिल्लगी उड़ाने का मौका न मिले। इसीसे इस गुरुतर कार्यमें ब्रह्मचारीको ही प्रवृत्त भी होना चाहिये; क्योंकि उपदेशक होनेका सच्चा अधिकारी ब्रह्मचारी ही है।

प्रेम

संसारमें प्रेम बहुत ही अमूल्य वस्तु है। इसकी समता करनेवाली कोई भी चीज नहीं है। प्रेममें ऐसा जादू है कि यह संसारको अपने वशमें कर लेता है। वह हृदय धन्य है, जो प्रेमी हो—जिसमें संसारके प्रति प्रेम-भाव हो। प्रेम स्वर्गीय पदार्थ है और बड़ा ही रस-पूर्ण है। जिस हृदयमें प्रेम नहीं, वह हृदय, हृदय ही नहीं; प्रेम-शून्य हृदयको पत्थर कहना चाहिये, दयाहीन कहना चाहिये। इसलिये ब्रह्मचारीको प्रेमी होना चाहिये।

जो ब्रह्मचारी संसारके प्रति प्रेमका भाव रखता है, सबपर दया-भाव रखता है, अपने मनको सदा शुद्ध प्रेम-मय रखता है,

वह समय पाकर अमर हो जाता है। ब्रह्मचारीका हृदय प्रेम-पूर्ण इसलिए होना चाहिये कि उसको देशका सुधार करनेमें तत्पर होना पड़ता है। प्रेमी जीवकी बातोंका प्रभाव जितना अधिक पड़ता है, उतना दूसरेकी बातका नहीं। इसीसे कहा जा रहा है कि ब्रह्मचारीको प्रेमी होना चाहिये, ताकि उसको अपने काममें सफलता प्राप्त हो। क्योंकि यदि उसकी बात कोई प्रेमसे सुनेगा ही नहीं, तो अमल क्या करेगा? और प्रेमसे लोग तभी सुनेंगे और उसी की बात सुनेंगे, जो सुननेवालोंको प्रेमकी दृष्टिसे देखेगा।

ब्रह्मचारीका संसारके प्रति प्रेम यही है कि वह "वसुधैव कुटुम्बकम्" के अनुसार समूचे संसारके लोगोंको अपना परिवार समझे। जिस प्रकार अपने घरके किसी आदमीसे यदि कोई अपराध हो जाता है, तो सहन करके उसे शिक्षा ही दी जाती है—शीघ्र उसका त्याग नहीं किया जाता, उसी प्रकार संसारका कोई भी आदमी यदि अपने साथ कोई अनुचित बर्त्ताव कर बैठे, तो ब्रह्मचारीको चाहिये कि वह उसे उपदेश ही दे; यह नहीं कि घृणा करे और क्रोध पूर्वक उसपर दौरात्म्य करनेके लिए आरूढ़ हो जाय। इस प्रकारकी क्षमाशीलतासे संसारके लोग कुछ ही दिनोंमें प्रेम करने लगते हैं और अपना हृदय भी समुन्नत हो जाता है। क्योंकि जो मनुष्य संसारके लोगोंको अपने प्राणीके समान समझता है तथा उनके दुःख-सुखमें शामिल होता है, उसे संसारके लोग भी अपने प्राणीके समान समझकर उसका कभी एक बाल भी बांका नहीं होने देते। ऐसा विचार रखने वालेपर ईश्वर भी कृपा रखते हैं।

देश-सेवा

ब्रह्मचारीके जीवनकी प्रधान बात होनी चाहिये, देश-सेवा। जो मनुष्य ब्रह्मचर्यका पूर्ण रीतिसे पालन करके शक्तिका संचय तो कर लेता, पर उस संचित शक्तिका उपयोग नहीं करता, उससे किसीकी भलाई नहीं करता, उसका सारा परिश्रम व्यर्थ है। जीवन वही धन्य है, जो दूसरेकी भलाई करनेमें व्यतीत हो; धन वही सार्थक है, जो दुखियोंके लिए खर्च हो; विद्या वही सफल है, जो औरोंको लाभ पहुँचावे; शक्ति वही उत्तम है जो सेवामें लगे। जिस प्रकार आमका वृक्ष बड़ा होकर लोगोंको सुस्वाद-पूर्णफल देता है और यदि न दे, तो वन्ध्या कहलाता है, उसी प्रकार ब्रह्मचारी भी अपनी संचित शक्तिसे देशकी सेवा करता है और वह देश-सेवा न करे, तो वह निकम्मा है। वह शक्ति ही क्या, जो दूसरोंके काम न आवे।

संसारमें सेवा-धर्म सबसे बड़ा और उत्तम धर्म है। संसारमें जितने महापुरुष हुए हैं, वे सब सेवा-धर्मके ही प्रतापसे हुए हैं। बिना सेवा-धर्मके कोई भी मनुष्य बड़ा नहीं हो सकता, यह अटल बात है। इस धर्ममें उच्चता ही उच्चता है। जिसमें सेवा-भाव नहीं वह शक्ति-सम्पन्न होते हुए भी कुछ नहीं है। जिस मनुष्यसे संसारका कोई लाभ न हो, उस मनुष्यका जीवित रहना, पृथिवीके लिए भार-स्वरूप है।

इसलिए ऐ ब्रह्मचारियो! अपने हृदयमें सेवाका भाव भरो

और हमेशा परमात्मासे इस बातकी प्रार्थना करो कि वह तुम्हें संसारका सच्चा सेवक बनावे। भला उस मनुष्यके बराबर संसारमें कौन हो सकता है, जिसकी काया-वाचा और मनसा दूसरोंके काममें लग जाय? याद रखो कि संसारकी कोई भी चीज काम नहीं आनेकी। यहाँ तक कि यह अत्यन्त प्यारा शरीर जिसे तुम इतने यत्नसे पालते और रखते हो, वह भी यहीं-का-यहीं मिट्टीमें मिल जाता है—साथ नहीं देता! ऐसी दशामें यदि यह नश्वर शरीर दूसरोंके उपकारमें या दूसरोंकी सेवा करनेमें लग जाय, तो इससे बढ़कर और क्या हो सकता है?

भारत-माता

जिसने तुम्हें पाल-पोसकर इतना बड़ा किया, जिसके वक्षःस्थल-पर तुम खेल-कूदकर, लोट-पोटकर तथा आमोद-प्रमोद करके इतने बड़े हुए हो और रहते हो, जिसके उदर से निकली हुई चीजें खाकर तुम जीते हो, जो जन्मसे लेकर मृत्यु-पर्यन्त तुम्हारा समान भावसे पालन करती है तथा जिसके बलपर तुम अपने सारे बल-पौरुषोंको काम में ला सकते हो—वही भारत-माता है। जन्म देनेवाली माँ सबकी भिन्न-भिन्न है, पर भारत-माता भारतमें रहनेवाले सब लोगोंकी एक ही है। अहा! इस भारत-माताके समान पालन करनेकी शक्ति किसीमें भी नहीं। यह छोटे-बड़े, अमीर-ग़रीब, स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध, ऊँच-नीच, कीट-पतंग, पशु-

पक्षी, जलचर-थलचर सबपर सम,दृष्टि रखती है। इस माताके प्रति प्रत्येक मनुष्य का कुछ-न-कुछ कर्त्तव्य है। कहा है:—

"जननी जन्म-भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी"

अतएव प्यारे बन्धुओ! ऐसी उपकारिणी माताकी ओर कुछ भी तो ध्यान दो। उसके अनाथ और अबोध बच्चे जो कि तुम्हारे भाई हैं, तड़प रहे हैं। भारत-माता उनके दुःखसे व्याकुल हो रही है। तुम्हीं सोचो, यदि तुम्हारे अज्ञान बच्चेपर किसी तरहकी मुसीबत आवे, तो तुम्हें कितनी पीड़ा होगी? यह जानते हुए भी कि माँ व्याकुल होकर बिलख रही है, तुम चुप क्यों बैठे हो? क्या तुम अपने भाइयोंके कष्टको दूर करके अब भी माताको प्रसन्न नहीं करना चाहते? यदि नहीं, तो तुम कृतघ्नी हो, संसारमें तुम्हारे जीनेकी कोई जरूरत नहीं। निकल जाओ इस संसारसे। जब तुम हमारा काम नहीं करते, तो हमसे तुम्हें काम लेने का क्या अधिकार है? यदि तुम माँके दुःख दूर करनेके लिए तैयार नहीं हो, तो उससे अपनी सेवा क्यों कराते हो? क्यों उसके उदरसे निकली हुई नाना प्रकारकी चीजें, जैसे—अन्न-फल आदि खाते हो? क्यों उसपर बोझकी भाँति अपने शरीरको लादे हुए हो? उसके बच्चों जैसे—गाय, भैंस आदिसे क्यों अपनी परवरिश करते हो?

तुम उसके प्रति कुछ भी नहीं कर रहे हो, फिर भी वह तुम्हारा पालन अपने सुपूतोंके अनुसार ही करती है। किन्तु यह उसकी महानता है। क्या उसकी इस महानतासे तुम अनुचित लाभ उठाना चाहते हो? यदि हाँ, तो यह तुम्हारी भूल है। माँकी नेकि-

बोझा बदला चुकाये बिना तुम कभी भी सुखी नहीं रह सकते, यह निश्चय है।

अतएव ब्रह्मचारियोंको भारत-माताके दुःखोंकी ओर ध्यान देकर अपने कर्त्तव्यका पालन करना चाहिये। क्योंकि ब्रह्मचारी ही भारत माताके कर्त्तव्यशील पुत्र हैं। लायक पुत्रसे ही माँ सेवा पानेकी विशेष आशा रखती है। यदि योग्य और शक्ति सम्पन्न पुत्र होकर नालायक निकल जाता है, तो माताको अत्यधिक दुःख होता है। और फिर ऐसे लायक पुत्रको लायकी हासिल करनेसे लाभ? जो पुत्र विद्वान् और बलवान् होते हुए भी माताकी सेवा नहीं करता, उसे नरायमके सिवा और क्या कहा जा सकता है?

भारत-माताकी सेवा करनेके लिए तथा उसे सुख पहुँचानेके लिए मनुष्यको सदाचारी और सत्यवक्ता अवश्य होना चाहिये, जो मनुष्य मातृ-भक्त होते हुए सदाचारी और सत्यवक्ता नहीं होता, वह माताका स्नेह-भाजन कदापि नहीं हो सकता। जिस लड़केकी लोकमें निन्दा होती है, उससे माता क्या कभी प्रसन्न रह सकती है? जो मनुष्य सदाचारी नहीं होता, सदा झूठ बोलता है, उसीकी लोकमें निन्दा होती है। इसलिए माताके भक्तोंको सदाचारी और सत्यवादी भी होना चाहिये।

स्त्री-पुरुष-जीवन

इस विषयमें पहले बहुत कुछ लिखा जा चुका है; किन्तु यहाँ कुछ और लिखना आवश्यक है जो कि ब्रह्मचारीके लिये बहुत ही

जरूरी है। बँगलाकी 'नारी-रहस्य' नामकी पुस्तकमें लिखा है—
"स्त्री-पुरुष-जीवन समाजकी एक मूल ग्रन्थि है। स्त्री और पुरुषका दाम्पत्य-सम्बन्ध जितना मजबूत रहेगा, सामाजिक जीवनकी शृंखला भी उतनी ही सुदृढ़ रहेगी। इस सम्बन्धको सुदृढ़ बनानेके लिए समाजने दो उपाय निश्चित किये हैं; एक तो स्त्री और पुरुषके शारीरिक सम्बन्धमें हर तरहकी सुविधा देना और दूसरे दोनोंको एक ही धर्म, कर्म, व्रत तथा आदर्शमें बाँध देना। इन दोनों बातोंका जहाँ एकीकरण होता है, उसीको विवाह-सम्बन्ध कहते हैं।

यह प्रश्न किया जाता है कि समाज-बन्धनके लिए दाम्पत्य-सम्बन्धकी क्या आवश्यकता है? किस अवस्थामें पहले-पहल दम्पतिकी उत्पत्ति हुई? इसका प्रधान लक्ष्य है सन्तानोत्पत्ति-उसका पालन तथा भरण-पोषण। प्रारम्भिक अवस्थामें प्रत्येक पुरुषको अपनी रक्षाका भार अपने ही ऊपर रखना पड़ता था। बाद गृह-निर्माण आवश्यक समझा गया। स्त्री अपने बच्चेको गोदमें लेकर बैठती थी और पुरुष उसकी रक्षा करता था। इस प्रकार समाजकी उत्पत्ति हुई।

अब इस समाजको उचित रीतिसे चलाने तथा उसकी उन्नति करनेके लिए ब्रह्मचारीको क्या करना चाहिये, यह स्वाभाविक ही समझा जा सकता है। सबसे बड़ी आवश्यकता इस बातकी है कि समाजके जितने मनुष्य हैं, सब संयमी बनें। बिना संयमके समाजकी उन्नति नहीं हो सकती। वह मनुष्य भी व्यभिचारी ही

है, जो दाम्पत्य-जीवनके नियमोंका यथार्थ रीतिसे पालन न करके रात-दिन विषयमें रत रहता है। गृहस्थोंमें रहनेवाले लोगोंको चाहिए कि वे स्त्री-पुरुष एक चारपाई पर प्रति दिन न सोया करें। क्योंकि एक जगह सोनेसे ब्रह्मचर्यका पालन नहीं हो सकता। चाहे वे सम्भोग न भी करें, तब भी ब्रह्मचर्यका नाश हो जाता है। कारण यह कि एक जगहके सोनेसे स्वाभाविक ही मनमें विकार उत्पन्न हो जाता है और मनमें जरा भी विकार उत्पन्न होनेसे वीर्य अपना स्थान छोड़ देता है। बाद वह स्थान-च्युत वीर्य किसी-न-किसी रूपमें बाहर निकल जाता है, जिसका निकलना कभी मालूम होता है और कभी तो बिलकुल मालूम ही नहीं होता।

नम्रता

बड़ोंकी शोभा नम्रता है। जिस मनुष्यमें नम्रता रहती है, उसको सब लोग पूजा करते हैं। यह एक ऐसी जड़ी है कि इसके सामने बड़े-बड़े क्रूर और खल-स्वभाववालोंको भी नीचा देखना पड़ता है। इसीसे किसी कवि ने कहा भी है:—

"क्षमा खड्ग लीन्हें रहै, खल को कहा बसाइ"

यद्यपि क्षमा और नम्रता दोनों विभिन्न वस्तुएँ हैं; तथापि जो मनुष्य नम्र होता है, उसमें क्षमाशीलता अपने आप आ जाती है और क्षमावान मनुष्य स्वाभाविक ही नम्र भी हो जाता है। इसलिए इस प्रसंगमें क्षमाका उदाहरण देना अप्रासंगिक या अनु-

चित नहीं कहा जा सकता। क्योंकि दोनोंका परस्परमें अंगागि सम्बन्ध है।

कहावत है कि, "नंगा ईश्वरसे भी बड़ा" अर्थात् खलोंकी खलतासे ईश्वर भी तरह दे जाता है। इससे यही सिद्ध होता है कि परमात्माके पास भी खलोंको परास्त करनेके लिये एक ही अस्त्र है; यानी—नम्रता या क्षमाशीलता। इसलिए मनुष्यको इस अनुपम रत्न नम्रताकी शरण अवश्य लेनी चाहिये। नम्र मनुष्य अपनी सारी इच्छाओंको बहुत जल्द पूरी कर लेता है। जिस कामको कोई मनुष्य नहीं कर सकता, उसे नम्र मनुष्य आनन-फानन कर लेता है। उदाहरणार्थ किसी कृपण मनुष्यसे कोई भी मनुष्य दमड़ी भरकी चीज नहीं ले सकता; पर नम्र मनुष्य उससे भी बड़ी-बड़ी चीजोंको जरासेमें ले लेता है। जो काम दबावसे भी नहीं हो सकता, वह नम्रतासे हो जाता है। अतः ब्रह्मचारीको यह गुण अपनेमें भरना चाहिये।

फुटकल बातें

अब इस प्रकरणमें, ब्रह्मचारियोंके लिए कुछ खास बातों का उल्लेख किया जायगा।

१—ब्रह्मचारीको साइकिल अथवा घोड़ेकी सवारी भूलकर भी न करनी चाहिये। क्योंकि इनसे अण्डकोष और गुदाके बीचकी नस दबती और घर्षित होती है। इस नसके दबनेका परिणाम यह होता है कि वीर्य नष्ट हो जाता है।

२—गद्देदार या अधिक मुलायम तथा गर्म बिस्तरे पर कभी न सोवे। इससे भी वीर्यके स्खलित हो जानेकी सम्भावना रहती है।

३—अधिक रात तक न जागे और न अधिक भोजन ही करे। ये दोनों ही बातें हानिकारक हैं।

४—यदि स्वप्नदोष होता हो, तो सोते समय मस्तकके पिछले भाग और गर्दनको ठंढे पानीसे खूब तर करना चाहिये तथा गुदाके पासकी नस पर अच्छी तरहसे पानीके छींटे लगाकर उसे तर कर देना उचित है। ऐसा प्रतिदिन करनेसे स्वप्नदोषादिक विकार दूर हो जाते हैं।

५—अपने मनको सदा उच्च विचारों और भावोंसे भरे रहना चाहिये। ओछे विचारोंसे मन भी तुच्छ हो जाता है।

अस्तु। ब्रह्मचारियोंके लाभकी प्रायः सभी बातें इस पुस्तकमें लिखी जा चुकीं। अब अन्तमें अपने देशके नवयुवकोंसे इतना ही कहना है कि, ऐ भारतीय नवजवानो! यह प्रभातका समय है, नींद और आलस्यको छोड़कर साहसके साथ इस पुस्तकमें बतलायी हुई बातों पर चलकर ब्रह्मचारी बनो और ब्रह्मचर्य-द्वारा शक्ति पैदा करके देश तथा जातिका उद्धार करो। बस यही मनुष्यका धर्म है और इसीमें मानव-जीवनकी सार्थकता भी है।

ब्रह्मचर्य की झलक

प्रार्थना

ॐ सहनाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै । तेजस्विना-वधीतमस्तु । मा विद्विषावहै । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ॐ असतो मा सद्गमय । तमसो मा ज्योतिर्गमय । मृत्योर्माऽमृतं गमय ॥

योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्ताम्
संजीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना
अन्यांश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन्
प्राणान्नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम्

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला, या शुभ्रवस्त्रावृता
या वीणावरदण्डमंडितकरा, या श्वेतपद्मासना
या ब्रह्माच्युतशंकरप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता
सा मां पातु सरस्वती भगवती, निःशेषजाड्यापहा

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै
र्वेदैः सांगपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः

चर्पटमंजरी का स्तोत्र

दिनमपि रजनी सायं प्रातः शिशिरवसन्तौ पुनरायातः
कालः क्रीडति गच्छत्यायुस्तदपि न मुञ्चत्याशावायुः १

भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते
प्राप्ते सन्निहिते मरणे नहि नहि रक्षति 'डुकृञ् करणे' भज०
जटिलो मुण्डी लुञ्छितकेशः काषायांबरबहुकृतवेषः
पश्यन्नपि च न पश्यति मूढः उदरनिमित्तं बहुकृतवेषः २
अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं दशनविहीनं जातं तुण्डम्
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं तदपि न मुञ्चत्याशापिण्डम् ३
पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम्
इह संसारे भवदुस्तारे कृपयाऽपारे पाहि मुरारे ४
पुनरपि रजनी पुनरपि दिवसः पुनरपि पक्षः पुनरपि मासः
पुनरप्ययनं पुनरपि वर्षं तदपि न मुञ्चत्याशामर्षम् ५
गेयं गीतानामसहस्रं ध्येयं श्रीपतिरूपमजस्रम्
नेयं सज्जनसंगे चित्तं देयं दीनजनाय च वित्तम् ६

भजन

काहे रे बन खोजन जाई।
सर्वनिवासी सदा अलेपा, तोही संग समाई ॥
पुष्प मध्य ज्यों बास बसत है, मुकुर माहिं जस छाई।
तैसे ही हरि बसैं निरंतर, घट ही खोजो भाई ॥
बाहर भीतर एकै जानो, यह गुरु ज्ञान बताई।
जन 'नानक' बिन आपा चीन्हे, मिटै न भ्रम की काई ॥

मन रे! परस हरि के चरन।
सुभग, सीतल कमल-कोमल, त्रिविध-ज्वाला-हरन ॥
जे चरन प्रल्हाद परसे, इन्द्र पदवी धरन ॥

जिन चरन ध्रुव अटल कीन्हो, राखि अपने सरन ॥
जिन चरन ब्रह्मांड भेंट्यो, नखसिखौ श्रीभरन ॥
जिन चरन प्रभु परसि लीन्हें, तरी गौतम घरन ॥
जिन चरन कालीहि नाथ्यो, गोपलीला करन ॥
जिन चरन धार्यो गोवर्द्धन, गरब मघवा हरन ॥
दास 'मीरा' लाल गिरिधर, अगम तारन तरन ॥

वैष्णव जन तो तेने कहिये जे पीड़ पराई जाणे रे
परदुःखे उपकार करे तोये, मन अभिमान न आणे रे
सकल लोकमां सहुने वंदे, निंदा न करे केनी रे
वाच काछ मन निश्चल राखे, धन धन जननी तेनी रे
समदृष्टि ने तृष्णात्यागी, परस्त्री जेने मात रे
जिह्वा थकी असत्य न बोले, परधन नव झाले हाथ रे
मोहमाया व्यापे नहि जेने, दृढ वैराग्य जेना मनमां रे
रामनामशुं ताली लागी सकल तीरथ तेना तनमां रे
वणलोभी ने कपटरहित छे, काम क्रोध निवार्यां रे
भणे नरसैंयो तेनुं दरशन करतां, कुल एकोतेर तार्यां रे

तुम ब्रह्मचर्य-व्रत पालो।
ऐ भारत-माँ के लालो! ॥
बड़े-बड़े योधा होते हैं, इसे पाल करके भाई!
ज्ञानी-बुद्धिमान हैं होते, सभी जनों को सुखदायी ॥

करो पूर्ण विश्वास आज से,
झूठ न कह कर टालो । तुम०
भीष्म पितामह ने इस बल से, भीषण समर मचाया था ।
परशुराम ने धार इसी को, रिपु का मान लचाया था ॥
महावीर हनुमान आदि के,
चरित भले पढ़ डालो । तुम०
स्वामी शंकर-दयानन्द ने, धर्म-ध्वजा फहराई थी ।
पाखण्डों का खण्डन करके, वैदिकता दिखलाई थी ॥
दोनों बालब्रह्मचारी = थे,
ऐ मंगल मति वालो । तुम०
ऋषि-मुनियों के परम तेज से, दुष्ट-दैत्य घबराते थे ।
आत्मिक शक्ति घोर तप करके, इसे साध कर पाते थे ॥
इसी वस्तु से सब कुछ मिलता,
जग में देखो-भालो । तुम०
नारी- नर इस अमृत-पान से, देह अमर कर सकते हैं ।
देश-जाति-कुल में पूजित हो, दुःख-दैन्य हर सकते हैं ॥
छोटे बच्चे-नवयुवकों को,
इस साँचे में ढालो । तुम०
रोग-रहित हो सौ वर्षों तक, जो कोई जीना चाहे ।
रक्षा करे वीर्य की अपने, संयम मन में निरबाहे ॥
'कविपुष्कर' कुछ काल नियम से,
इसे बन्धु अजमा लो ! तुम०

पालन कर ब्रह्मचर्य जग में यश पाइये !
वीर्य-नाश करके मत नरक-मध्य जाइये ॥
आत्म-दमन मूल-मंत्र वैदिक मत है यही—
मन-वच-क्रम छोड़ छल इसको अपनाइये ।
कर्मवीर-नीतिमान बनना जो चाहते—
उत्तम गुण मान इसे जीवन में लाइये ।
सत्य-धर्म को विचार चञ्चल चित हो नहीं—
'पुष्करकवि' देश और जाति-काम आइये ।

ब्रह्मचर्य का महत्व

(पुरुषोत्तम परशुराम)

झुका कहीं न, हाथ गले, काटता रहा ।
पैना कुठार, रक्त बहा, चाटता रहा ॥
भागे भगोड़, भीरु भिड़ा, धीर न कोई ।
मारे महीप, वृन्द बचा, वीर न कोई ॥
सुप्रसिद्ध राम,-जामदग्न्य, काछकुदान है ।
महिमा-अखण्ड, ब्रह्मचर्य, की महान है ॥ १ ॥

(महावीर-हनुमान)

सुग्रीव का सु,-मित्र बड़े, काम का रहा ।
प्यारा अनन्य,-भक्त सदा, राम का रहा ॥
लङ्का जलाय, काल खलों, को सुझा दिया ।
मारे प्रचण्ड, दुष्ट दिया, भी बुझा दिया ॥
हनुमान बली, वीर वीरों में प्रधान है ।
महिमा-अखण्ड, ब्रह्मचर्य, की महान है ॥ २ ॥

(राजर्षि-भीष्मपितामह)

भूला न किसी, भाँति कहीं, टेक टिकाना ।
माना मनोज, का न कहीं, ठीक ठिकाना ॥
जीते असंख्य, शत्रु रहा, दर्प दिखाता ।
शय्या शरों की, पाय मरा, धर्म सिखाता ॥
अब एक भी न, भीष्म बली, सा सुजान है ।
महिमा-अखण्ड, ब्रह्मचर्य, की महान है ॥ ३ ॥

(महात्मा शंकराचार्य)

संसार सार, हीन सदा, सा बढ़ा दिया ।
अल्पज्ञ जीव, मन्द दशा, से छुड़ा दिया ॥
अद्वैत एक, ब्रह्म सदा, को बता दिया ।
कैवल्य-रूप, सिद्धि सुधा, का पता दिया ॥
भ्रम-भेद भरा, शंकरेश, का न ज्ञान है ।
महिमा-अखण्ड, ब्रह्मचर्य, की महान है ॥ ४ ॥

(महर्षि दयानन्द सरस्वती)

विज्ञान-पाठ, वेद-पढ़ों, को पढ़ा गया ।
विद्या-विलास, विज्ञ वरों, का बढ़ा गया ॥
सारे असार, पन्थ मतों, को हिला गया ।
आनन्द-सुधा, सार दया, का पिला गया ॥
अब कौन दया, नन्द यती, के समान है ।
महिमा-अखण्ड, ब्रह्मचर्य, की महान है ॥ ५ ॥

नाथूरामशंकरशर्मा 'शंकर'

❀ सत्यं शिवं सुन्दरम् ❀